[2011] 1 उम. नि. प. 56

लालू प्रसाद यादव

बनाम

बिहार राज्य और एक अन्य

तथा

केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो

बनाम

बिहार राज्य और अन्य

1 अप्रैल, 2010

मुख्य न्यायमूर्ति के. जी. बालाकृष्णन्, न्यायमूर्ति आर. एम. लोढा और न्यायमूर्ति (डा.) बी. एस. चौहान

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 378(1) और (2) [सपठित दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन अधिनियम, 1946 की धारा 417] – दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील – ऐसे मामले में जिसमें अपराध का अन्वेषण दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन (केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो) द्वारा किया गया था, अपील फाइल करने का राज्य सरकार का अधिकार – धारा 378(1) के आरंभिक शब्दों "उपधारा (2) में जैसा उपबंधित है उसके सिवाय" का आशय उपधारा (2) में उल्लिखित वर्ग के मामलों को उपधारा (1) के मुख्य भाग के प्रवर्तित से अपवर्जित करना है इसलिए राज्य सरकार ऐसे मामलों में दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील फाइल करने के लिए सक्षम प्राधिकारी नहीं है ।

कानूनों का निर्वचन – कानूनी उपबंध के शब्दों और वाक्यों में परिवर्तन – ऐसे परिवर्तन सुविचारित और पूर्व-विद्यमान विधि को सीमित, विशेषित या परिवर्धित करने वाले माने जाने चाहिएं और ऐसे किसी अर्थान्वयन से बचना चाहिए जो कि उस अपवाद (खंड) को, जिससे धारा आरंभ होती है, निरर्थक और अतिशय बनाता है ।

कानूनों का निर्वचन – कानून की भाषा का अर्थान्वयन – किसी कानून की भाषा का परिशीलन यथारूप में किया जाना चाहिए और ऐसा कोई अर्थान्वयन करने से बचना चाहिए जिसके परिणामस्वरूप किन्हीं शब्दों को अस्वीकार किया जाता है किन्तु अर्थान्वयन का ऐसा नियम

अपवादरहित नहीं है ।

प्रस्तुत मामले में अपीलार्थी और उसकी पत्नी दोनों ने बिहार राज्य के मुख्य मंत्री का पद धारण किया है । इन अपीलों का संबंध उस अवधि से है जब अपीलार्थी बिहार के मुख्य मंत्री थे । उस अवधि के दौरान अपनी आय के ज्ञात स्रोतों के अननुपात में भ्रष्ट या अवैध साधनों से जंगम और स्थावर दोनों प्रकार की आस्तियों के अभिकथित अर्जन के लिए केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा अपीलार्थी और उसकी पत्नी के विरुद्ध भी एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की गई थी । वास्तव में, यह प्रथम इत्तिला रिपोर्ट पटना उच्च न्यायालय द्वारा केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो को बिहार सरकार के पशु पालन विभाग में वर्ष 1977-78 से 1995-96 के दौरान अधिक आहरण और व्यय के सभी मामलों की जांच और संवीक्षा करने के लिए दिए गए निदेश के अनुक्रम में दर्ज की गई थी । केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने मामले का अन्वेषण किया और अपीलार्थी और उसकी पत्नी के विरुद्ध विशेष न्यायाधीश, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो (पशु पालन विभाग), पटना के न्यायालय में एक आरोपपत्र फाइल किया था । अपीलार्थी के विरुद्ध भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(2) के साथ पठित धारा 13(1)(ङ) के अधीन ये आरोप विरचित किए गए कि उसने उक्त अवधि के दौरान इतनी आस्तियां अर्जित कीं जो उसकी आय के ज्ञात स्रोतों के अननुपात में थीं और उसके नाम में और उसकी पत्नी और बच्चों के नाम में संपत्ति के जो धनीय संसाधन उसके कब्जे में थे उनके बारे में वह संतोषप्रद लेखा नहीं दे सका । अपीलार्थी की पत्नी को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(1)(ङ) और धारा 13(2) के साथ पठित भारतीय दंड संहिता की धारा 109 के अधीन उक्त अपराध कारित करने के लिए अपने पति को दुष्प्रेरित करने के लिए आरोपित किया गया था । विशेष न्यायाधीश, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो (पशु पालन विभाग), पटना के न्यायालय ने विचारण पूरा हो जाने पर यह अभिनिर्धारित करते हुए अभियुक्तों को दोषमुक्त कर दिया कि अभियोजन पक्ष उनके विरुद्ध लगाए गए आरोपों को साबित करने में असफल रहा है । केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के अनुसार केन्द्रीय सरकार ने विचारण न्यायालय के निष्कर्षों और परिणामों पर विचार करने के पश्चात् यह विवेकपूर्ण और सुविचारित विनिश्चय किया कि विचारण न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध अपील फाइल करने का कोई भी आधार साबित नहीं किया गया था । तथापि, राज्य सरकार ने पटना उच्च न्यायालय के समक्ष दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध अपील करने की विशेष इजाजत फाइल

की । अभियुक्तों को क्रमशः प्रत्यर्थी सं. 1 और प्रत्यर्थी सं. 2 के रूप में दर्शाया गया था और केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो को प्रत्यर्थी सं. 3 के रूप में पक्षकार बनाया गया था । उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने प्रत्यर्थी को यह कारण दर्शाने की सूचना जारी की थी कि अपील करने की विशेष इजाजत प्रदान क्यों न कर दी जाए । प्रत्यर्थी सं. 1 और प्रत्यर्थी सं. 2 की ओर से इसके प्रत्युत्तर में राज्य सरकार द्वारा अपील फाइल करने के संबंध में प्रारंभिक आक्षेप फाइल किया गया था । अपील फाइल करने के बारे में प्रत्यर्थी सं. 1 और प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा उठाए गए प्रारंभिक आक्षेप का प्रत्यर्थी सं. 3 (केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो) द्वारा समर्थन किया गया था । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने अपील की संधार्यता के प्रश्न के संबंध में दी गई दलीलों की सुनवाई की और प्रारंभिक आक्षेप को उलट दिया और यह अभिनिर्धारित किया कि राज्य सरकार द्वारा फाइल की गई अपील संधार्य थी । इसी आदेश के विरुद्ध विशेष इजाजत लेकर दो अपीलें फाइल की गई हैं । इन दोनों अपीलों में से एक अपील अभियुक्तों द्वारा और दूसरी अपील केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा फाइल की गई है । प्रस्तुत अपीलों में विचारार्थ प्रश्न यह है कि क्या (बिहार) राज्य सरकार को विशेष न्यायाधीश, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो (पशु पालन विभाग), पटना द्वारा पारित उस निर्णय के विरुद्ध अपील फाइल करने की सक्षमता है जिसके द्वारा अभियुक्त व्यक्तियों को तब दोषमुक्त किया गया था जब मामले का अन्वेषण दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन (केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो) द्वारा किया गया था । अपीलार्थी-अभियुक्त और केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने यह दलील दी कि ये मामले दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 378(2) के अंतर्गत आते हैं और उसकी उपधारा (1) में आने वाले "उपधारा (2) में जैसा उपबंधित है उसके सिवाय" प्रारंभिक खंड के कारण धारा 378(1) के कार्यक्षेत्र से बाहर हैं । प्रत्यर्थी-राज्य सरकार ने यह दलील दी कि उपधारा (1) में किसी मामले में और उपधारा (2) में भी शब्द का प्रयोग करने से यह उपदर्शित होता है कि विधानमंडल का आशय यह था कि साधारण नियम यह होगा कि राज्य सरकार किसी और प्रत्येक मामले में अपील फाइल कर सकती है और केन्द्रीय सरकार, इसके अलावा उपधारा (2) के अंतर्गत आने वाले किसी मामले में अपील फाइल कर सकती है और यह कि धारा 377 और धारा 378 तात्विक रूप से समान हैं और धारा 377 का जो निर्वचन किया गया है वही निर्वचन धारा 378 का भी किया जाना चाहिए । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलें मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 378 की उपधारा (1) के आरंभिक शब्द "उपधारा (2) में जैसा उपबंधित है उसके सिवाय" अपवाद की प्रकृति के हैं और उनका आशय उपधारा (2) में उल्लिखित वर्ग के मामलों को उपधारा (1) के मुख्य भाग के प्रवर्तन से अपवर्जित करना है । इन शब्दों का इस संदर्भ में कोई और अर्थ नहीं है किन्तु वे उपधारा (1) के प्रवर्तन को विशेषित करते हैं और उसके कार्यक्षेत्र से उपधारा (2) में निर्दिष्ट मामलों के प्रकार को बाहर रखते हैं, अर्थात् (i) वे मामले जिसमें अपराध का अन्वेषण 1946 के अधिनियम के अधीन गठित दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन द्वारा किया गया है और (ii) वे मामले जिसमें अपराध का अन्वेषण 1973 की संहिता से भिन्न किसी केन्द्रीय अधिनियम के अधीन किसी अपराध का अन्वेषण करने के लिए सशक्त किसी अन्य अभिकरण द्वारा किया गया है । धारा 378 का अर्थान्वयन ऐसी रीति में करने से, जिसमें उपधारा (2) में उल्लिखित मामलों के दो प्रवर्गों के सिवाय प्रत्येक मामले में राज्य सरकार द्वारा दोषमुक्ति के आदेश से अपील करना अनुज्ञात किया जाता है, आरंभिक शब्दों में अभिव्यक्त अपवाद (खंड) को पूर्णतः प्रभावी किया जाएगा । "उपधारा (2) में जैसा उपबंधित है, उसके सिवाय" शब्द 1973 की संहिता में जोड़े गए थे; 1898 की संहिता की धारा 417 में ये शब्द नहीं थे । अर्थान्वयन का यह सुविदित नियम यह है कि शब्दों और वाक्यांशों में किए गए सभी परिवर्तनों के बारे में यह माना जा सकता है कि वे सुविचारित हैं और पूर्व-विद्यमान विधि को, जैसे ही शब्दों में किए गए परिवर्तन लागू होते हैं, सीमित, विशेषित या परिवर्धित करने के प्रयोजनार्थ हैं । ऐसे किसी अर्थान्वयन से बचना चाहिए जो उस अपवाद (खंड) को, जिससे धारा आरंभ होती है, निरर्थक और अतिशय बना देता है । यदि धारा 378 की उपधारा (1) और उपधारा (2) का वही निर्वचन किया जाए जिसका राज्य सरकार ने दावा किया है तो यह कहा जाएगा कि इस बात के होते हुए भी कि शिकायत राज्य सरकार या उसके अधिकारियों द्वारा दर्ज नहीं की गई थी; यह कि अन्वेषण उसके पुलिस स्थापन द्वारा नहीं किया गया था; यह कि अभियोजन न तो राज्य सरकार द्वारा आरंभ किया गया था और न ही उसके द्वारा चालू रखा गया था; यह कि अभियोजक की नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा नहीं की गई थी; यह कि राज्य सरकार का दांडिक मामले से कोई संबंध नहीं है; यह कि अभियोजन आरंभ करने से उसे तर्कसम्मत रूप से पूरा करने तक सभी कदम दिल्ली पुलिस विशेष स्थापन द्वारा उठाए गए थे, फिर भी राज्य सरकार धारा 378(1) के अधीन दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध अपील फाइल कर सकती है । यह आरंभिक

शब्दों में प्रतिबिंबित अपवाद (खंड) "उपधारा (2) में जैसा उपबंधित है, उसके सिवाय" को व्यर्थ, निरर्थक और अनावश्यक बनाने की कोटि में आएगा । यदि विधानमंडल का आशय उपधारा (2) में निर्दिष्ट वर्ग के मामलों सहित दोषमुक्ति के सभी मामलों में धारा 378(1) के अधीन राज्य सरकार को अपील करने का अधिकार देने का था तो आरंभिक शब्दों में अपवाद (खंड) को सम्मिलित करना आवश्यक नहीं होता । इन शब्दों का प्रयोग किए बिना भी इस/उद्देश्य की पूर्ति हो सकती थी क्योंकि 1898 की संहिता की तत्कालीन धारा 417 राज्य सरकार को दोषमुक्ति के सभी मामलों में अपील करने के लिए समर्थ बनाती थी जबकि उसकी उपधारा (2) में उल्लिखित दो प्रकार के मामलों में दोषमुक्ति के आदेश से अपील केन्द्रीय सरकार के निदेशाधीन भी फाइल की जा सकती थी । (पैरा 27)

संसद् ने 1973 की संहिता में दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध अपील करने के लिए कतिपय उपांतरणों सहित उपबंध पुनः अधिनियमित किए । उसने "उपधारा (2) में जैसा उपबंधित है उसके सिवाय" शब्द जोड़कर भाषा में परिवर्तन किया । इन शब्दों को जोड़कर भाषा में किए गए परिवर्तन से यह निष्कर्ष निकलता है कि विधानमंडल ने (1973 की संहिता की) धारा 378 में सोच-विचार कर परिवर्तन किए । हमें खेद है कि अपवाद (खंड) के तौर पर धारा 378(1) में जोड़े गए शब्दों का वही निर्वचन करके जो कि धारा 417 (1898 की संहिता) का किया गया है, उनकी अनदेखी नहीं की जा सकती है । तथापि, यदि पश्चात्वर्ती कानून में उसी भाषा का प्रयोग नहीं किया गया है जैसी कि वह पूर्ववर्ती कानून में थी तो परिवर्तन के बारे में यह माना जाना चाहिए कि वह सोच-विचार कर किया गया है । (पैरा 29 और 31)

कानूनों के अर्थान्वयन का एक नियम यह है कि कानून की भाषा को यथारूप में पढ़ा जाना चाहिए और ऐसे किसी अर्थान्वयन से बचना चाहिए जिसके परिणामस्वरूप शब्दों को अस्वीकार किया जाता है; विधानमंडल द्वारा प्रयुक्त प्रत्येक शब्द को अर्थ देने का प्रयास किया जाना चाहिए । तथापि, कानूनों के अर्थान्वयन का ऐसा नियम अपवादरहित नहीं है । (पैरा 32)

धारा 378 की उपधारा (1) में आने वाले आरंभिक शब्दों – "उपधारा (2) में जैसा उपबंधित है उसके सिवाय"– द्वारा मुख्य उद्देश्य और विधायी आशय स्पष्ट हो जाने के कारण, अर्थात्, राज्य सरकार को उपधारा (2) में वर्णित दो प्रकार के मामलों में दोषमुक्ति के आदेश से अपील फाइल करने के लिए दी गई साधारण शक्ति में बाधा डालने के लिए उपधारा (2) में

"भी" शब्द का प्रयोग करने से कोई अर्थ नहीं निकलता । यदि उपधारा (2) में प्रयुक्त "भी" शब्द का अर्थान्वयन राज्य सरकार द्वारा सुझाई गई रीति में किया जाता है तो उसका परिणाम उपधारा (1) में के आरंभिक शब्दों को अकृत करना होगा और इससे इन शब्दो को उनके ऋजु व्यवहार से वंचित करना होगा । चूंकि उपधारा (1) के आरंभ में अपवाद (खंड) धारा 378 में अभिव्यक्त रूप से जोड़ा गया है और उपधारा (2) में आने वाले "भी" शब्द का उससे सामंजस्य स्थापित करना संभव नहीं है इसलिए "भी" शब्द को कोई समीचीन अर्थ नहीं दिया जा सकता है और उक्त शब्द को अतात्विक मानना होगा । उपधारा (2) में अधिनियमित "भी" शब्द को अतात्विक या असमीचीन घोषित करना अधिक संतोषप्रद नहीं है किन्तु "उपधारा (2) में जैसा उपबंधित है उसके सिवाय" शब्दों को उनके सही और स्पष्ट अर्थान्वयन से वंचित करना और भी असंतोषप्रद है । इस दृष्टि से कि उपधारा (1) के आरंभिक शब्दों में अभिव्यक्त रूप से कथित अपवाद (खंड) बनाए रखा जाए, यह आवश्यक है कि उपधारा (2) में आने वाले "भी" शब्द को अतात्विक माना जाए । (पैरा 34)

धारा 378 की उपधारा (1) में "किसी मामले में" वाक्यांश से निस्संकोच "सभी मामलों में" अभिप्रेत है, किन्तु उक्त धारा के आरंभिक शब्द राज्य सरकार पर उपधारा (2) में उल्लिखित दो प्रकार के मामलों में अपील फाइल करने का निदेश देने के संबंध में बाधा डालते हैं । (पैरा 35)

धारा 24 का परिशीलन करने से यह दर्शित होता है कि केन्द्रीय सरकार अपनी ओर से अभियोजन, अपील या अन्य कार्यवाहियों के संचालन के लिए अपने लोक अभियोजक नियुक्त करती है और राज्य सरकार अपनी ओर से अभियोजन, अपील या अन्य कार्यवाहियों के संचालन के लिए अपने लोक अभियोजक नियुक्त करती है । उनका एक-दूसरे पर कोई नियंत्रण नहीं होता है । यथास्थिति, केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार किसी मामले या वर्ग के मामलों के प्रयोजन के लिए एक विशेष लोक अभियोजक नियुक्त कर सकती है । धारा 378(1) के अधीन राज्य सरकार अपने लोक अभियोजक को दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध अपील फाइल करने का निदेश दे सकती है जबकि धारा 378(2) के अधीन केन्द्रीय सरकार अपने लोक अभियोजक को दोषमुक्ति के किसी आदेश के विरुद्ध अपील फाइल करने का निदेश दे सकती है । इस प्रकार, दोषमुक्ति के किसी आदेश से अपील करने में लोक अभियोजक का सहबद्ध होना आवश्यक है । 1946 के अधिनियम में कतिपय ऐसे अपराधों या वर्ग के

अपराधों के अन्वेषण के लिए, जो कि 1946 के अधिनियम की धारा 3 के अधीन अधिसूचित हैं, एक विशेष पुलिस स्थापन के गठन के लिए उपबंध किया गया है । 1946 के अधिनियम के उपबंधों का सूक्ष्म परिशीलन करने पर यह दर्शित होता है कि उसके अधीन अन्वेषण केन्द्रीय अन्वेषण है और संबंधित अधिकारी केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त अधिकारी के अधीक्षण के अधीन होते हैं । केन्द्रीय सरकार का ही दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन पर अधीक्षण होता है । अतः इस बात की अवेक्षा करना महत्वपूर्ण है कि केन्द्रीय सरकार ही दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन द्वारा मामले के अन्वेषण और उसके अंतिम परिणाम से संबद्ध होती है । इसी कारण से धारा 378 की उपधारा (2) में केन्द्रीय सरकार के निदेश पर उसके लोक अभियोजक द्वारा उसमें उल्लिखित दो प्रकार के मामलों में दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील करने का उपबंध है । इस प्रकार, उपधारा (1) में के आरंभिक शब्द राज्य सरकार को दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध अपील फाइल करने के लिए दी गई साधारण शक्ति को द्योतित करते हैं जिससे कि केन्द्रीय अभिकरण, जिसका उपधारा (2) में निर्दिष्ट मामलों के अन्वेषण से एकमात्र और सन्निकट संबंध है, समुचित मामलों में केन्द्रीय सरकार को अपील करने का निदेश देने के लिए समावेदन कर सके । (पैरा 37)

विधानमंडल ने दोषमुक्ति के आदेश से अपील के मामले में पारस्परिक रूप से अनन्य विभाजन बनाए रखा है चूंकि उपधारा (2) में निर्दिष्ट दो प्रकार के मामलों में दोषमुक्ति के आदेश से अपील करने के लिए सक्षम प्राधिकारी केन्द्रीय सरकार है और ऐसे मामलों में राज्य सरकार के प्राधिकारी को अपवर्जित किया गया है । आवश्यक विवक्षा के रूप में, यह अभिनिर्धारित किया जाना है कि (बिहार) राज्य सरकार अपने लोक अभियोजक को विशेष न्यायाधीश, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो (पशु पालन विभाग), पटना द्वारा पारित निर्णय से अपील उपस्थित करने का निदेश देने के लिए सक्षम नहीं है । (पैरा 40)

किसी विनिश्चय का सार उसका विनिश्चयाधार होता है न कि उसमें पाई गई प्रत्येक मताभिव्यक्ति । यद्यपि धारा 377 की उपधारा (2) में 1978 के अधिनियम सं. 45 द्वारा संशोधन किया गया और उसमें "भी" शब्द जोड़ दिया गया है किन्तु उस संशोधन से संबंधित उद्देश्यों और कारणों का कथन, जहां तक धारा 378(1) और (2) के अर्थान्वयन का संबंध है, सुसंगत नहीं है । जहां तक धारा 378 का संबंध है, उपधारा (2) में आने वाले "भी" शब्द को वह अर्थ प्रदान नहीं किया जा सकता जिसके

परिणामस्वरूप उपधारा (1) में "उपधारा (2) में जैसा उपबंधित है उसके सिवाय" नामक नियंत्रणकारी शब्दों के प्रभाव को समाप्त करना होगा जो कि उपधारा (2) में उल्लिखित दो प्रकार के मामलों को उपधारा (1) के मुख्य भाग के प्रवर्तन से अपवर्जित करने संबंधी विधायी आशय के द्योतक हैं । (पैरा 39)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2002]	(2002) 7 एस. सी. सी. 273 : **भारत संघ और एक अन्य** बनाम **हंसोली देवी और अन्य** ;	21
[1978]	[1978] 3 उम. नि. प. 135 = (1977) 3 एस. सी. सी. 25 : **एकनाथ शंकरराव मुक्कावर** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	9, 13, 38, 39
[1976]	[1976] 4 उम. नि. प. 24 = (1976) 1 एस. सी. सी. 385 : **खेमराज** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ;	9, 30, 31
[1968]	ए. आई. आर. 1968 एस. सी. 647 : **उड़ीसा राज्य** बनाम **सुधांशु शेखर मिश्रा और अन्य** ;	39
[1955]	[1955] 2 एस. सी. आर. 603 : **बंगाल इम्युनिटी कंपनी लिमिटेड** बनाम **बिहार राज्य और अन्य** ;	28
[1949]	ए. आई. आर. 1949 प्रिवी कौंसिल 120 : **डी. आर. फ्रेज़र एंड कंपनी लिमिटेड** बनाम **मिनिस्टर ऑफ नेशनल रेवेन्यू** ;	29
[1886]	(1886) 11 अपील केसेज़ 627 : **साल्मन** बनाम **डनकोम्बे और अन्य** ;	33
[1875-76]	(1875-76) एल. आर. 1 सी. पी. डी. 691 : **स्टोन** बनाम **येविल** ;	32

[1844]	(1844) 9 क्लार्क एंड फिन्नेली 85 : **ससेक्स पीरेज वाला मामला ;**	20
[1842]	(1842) 9 मीसन एंड वैल्सबी 378 : **अटर्नी जनरल** बनाम **लाकवुड ;**	19
[1836]	(1836) 2 मीसन एंड वैल्सबी 191 : **बेके** बनाम **स्मिथ ;**	9
[1766]	(1766) पार्कर 227 : **राबर्ट मिशेल** बनाम **सोरेन टोरप ;**	17
	97 सी. एल. आर. 465 : **विल्लियम्स** बनाम **मिलोटिन ।**	25

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2010 की दांडिक अपील सं. 662 और 670.

2007 की सरकारी अपील सं. 1 में पटना उच्च न्यायालय के तारीख 20 सितम्बर, 2007 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

उपस्थित होने वाले पक्षकारों की ओर से — सर्वश्री राम जेठमलानी, प्रवीण एच. पारेख, चितरंजन सिन्हा, ए. मरियारपुथम, एल. नागेश्वर राव, ज्येष्ठ अधिवक्ता, मैसर्स लता कृष्णमूर्ति, पी. आर. माला, ई. आर. कुमार, समीर पारेख, सौरभ अजय गुप्ता, सोमंद्री गौड़, प्रणव दीश (मैसर्स पारेख एंड कंपनी की ओर से), मैसर्स टी. ए. खान, देवदत्त कामत, अरविन्द के. शर्मा, पी. के. डे (बी. कृष्ण प्रसाद की ओर से), विश्वजीत सिंह, (श्रीमती) वीरा कौल सिंह, रितेश अग्रवाल, सिद्धार्थ सेंगर और अभीन्द्र महेश्वरी

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति आर. एम. लोढा ने दिया ।

न्या. लोढा – इजाजत दी जाती है ।

2. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (जिसे संक्षेप में "1973 की संहिता" कहा गया है) की धारा 378 में दोषमुक्ति के आदेश से अपील के लिए

उपबंध अधिनियमित किया गया है । उक्त उपबंध, जैसा कि वह 2005 के संशोधन से पूर्व विद्यमान था, निम्नलिखित रूप में है :–

"धारा 378. **दोषमुक्ति की दशा में अपील** – (1) उपधारा (2) में जैसा उपबंधित है उसके सिवाय और उपधारा (3) और (5) के उपबंधों के अधीन रहते हुए राज्य सरकार किसी मामले में लोक अभियोजक को उच्च न्यायालय से भिन्न किसी न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति के मूल या अपीली आदेश से या पुनरीक्षण में सेशन न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति के आदेश से उच्च न्यायालय में अपील उपस्थित करने का निदेश दे सकती है ।

(2) यदि ऐसा दोषमुक्ति का आदेश किसी ऐसे मामले में पारित किया जाता है जिसमें अपराध का अन्वेषण दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन अधिनियम, 1946 (1946 का 25) के अधीन गठित दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन द्वारा या इस संहिता से भिन्न किसी केन्द्रीय अधिनियम के अधीन अपराध का अन्वेषण करने के लिए सशक्त किसी अन्य अभिकरण द्वारा किया गया है तो केन्द्रीय सरकार भी लोक अभियोजक को दोषमुक्ति के आदेश से उच्च न्यायालय में उपधारा (3) के उपबंधों के अधीन रहते हुए अपील उपस्थित करने का निदेश दे सकती है ।

(3) उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन कोई अपील उच्च न्यायालय की इजाजत के बिना ग्रहण नहीं की जाएगी ।

(4) यदि दोषमुक्ति का ऐसा आदेश परिवाद पर संस्थित किसी मामले में पारित किया गया है और उच्च न्यायालय, परिवादी द्वारा उसमें इस निमित्त आवेदन किए जाने पर, दोषमुक्ति के आदेश की अपील करने की विशेष इजाजत देता है तो परिवादी ऐसी अपील उच्च न्यायालय में उपस्थित कर सकता है ।

(5) दोषमुक्ति के आदेश से अपील करने की विशेष इजाजत दिए जाने के लिए उपधारा (4) के अधीन कोई आवेदन उच्च न्यायालय द्वारा, उस दशा में जिसमें परिवादी लोक सेवक है उस दोषमुक्ति के आदेश की तारीख से संगणित छह मास की समाप्ति के पश्चात् और प्रत्येक अन्य दशा में ऐसे संगणित साठ दिन की समाप्ति के पश्चात् ग्रहण नहीं किया जाएगा ।

(6) यदि किसी मामले में दोषमुक्ति के आदेश से अपील करने की विशेष इजाजत दिए जाने के लिए उपधारा (4) के अधीन कोई आवेदन नामंजूर किया जाता है तो उस दोषमुक्ति के आदेश से उपधारा (1) के अधीन या उपधारा (2) के अधीन कोई अपील नहीं होगी ।"

3. पूर्वोक्त उपबंध के प्रकाश में प्रस्तुत किया गया मुख्य प्रश्न यह है, अर्थात् क्या (बिहार) राज्य सरकार को विशेष न्यायाधीश, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो (पशु पालन विभाग), पटना द्वारा पारित तारीख 18 दिसम्बर, 2006 के उस निर्णय के विरुद्ध अपील फाइल करने की सक्षमता है जिसके द्वारा अभियुक्त व्यक्तियों को तब दोषमुक्त किया गया था जब मामले का अन्वेषण दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन (केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो) द्वारा किया गया था ।

4. श्री लालू प्रसाद यादव और श्रीमती राबड़ी देवी पति-पत्नी हैं । इन दोनों ने बिहार राज्य के मुख्य मंत्री का पद धारण किया है । इन अपीलों का संबंध तारीख 10 मार्च, 1990 से 28 मार्च, 1995 और 4 अप्रैल, 1995 से 25 जुलाई, 1997 की अवधि से है जब श्री लालू प्रसाद यादव बिहार के मुख्य मंत्री थे । पूर्वोक्त अवधि के दौरान अपनी आय के ज्ञात स्रोतों के अननुपात में भ्रष्ट या अवैध साधनों से जंगम और स्थावर दोनों प्रकार की आस्तियों के अभिकथित अर्जन के लिए केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा श्री लालू प्रसाद यादव और उसकी पत्नी के विरुद्ध भी एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की गई थी । वास्तव में, यह प्रथम इत्तिला रिपोर्ट पटना उच्च न्यायालय द्वारा केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो को बिहार सरकार के पशु पालन विभाग में वर्ष 1977-78 से 1995-96 की अवधि के दौरान अधिक आहरण और व्यय के सभी मामलों की जांच और संवीक्षा करने के लिए दिए गए निदेश के अनुक्रम में दर्ज की गई थी । केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने मामले का अन्वेषण किया और तारीख 19 अगस्त, 1998 को श्री लालू प्रसाद यादव और श्रीमती राबड़ी देवी के विरुद्ध विशेष न्यायाधीश, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो (पशु पालन विभाग), पटना के न्यायालय में एक आरोपपत्र फाइल किया था । श्री लालू प्रसाद यादव के विरुद्ध भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(2) के साथ पठित धारा 13(1)(ङ) के अधीन ये आरोप विरचित किए गए कि उसने उक्त अवधि के दौरान इतनी आस्तियां अर्जित कीं जो उसकी आय के ज्ञात स्रोतों के अननुपात में थीं और तारीख 31 मार्च, 1997 को उसके नाम में और उसकी पत्नी और बच्चों के नाम में 46,26,827 रुपए तक की संपत्ति के धनीय संसाधन उसके कब्जे में थे जिनके बारे में वह संतोषप्रद लेखा नहीं दे सका ।

श्रीमती राबड़ी देवी को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(1)(ङ) और धारा 13(2) के साथ पठित भारतीय दंड संहिता (संक्षेप में दंड संहिता) की धारा 109 के अधीन उक्त अपराध कारित करने के लिए अपने पति को दुष्प्रेरित करने के लिए आरोपित किया गया था । विशेष न्यायाधीश, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो (पशु पालन विभाग), पटना के न्यायालय ने विचारण पूरा हो जाने पर तारीख 18 दिसम्बर, 2006 के अपने निर्णय द्वारा यह अभिनिर्धारित करते हुए अभियुक्तों को दोषमुक्त कर दिया कि अभियोजन पक्ष उनके विरुद्ध लगाए गए आरोपों को साबित करने में असफल रहा है ।

5. यहां पर इस बात की अवेक्षा करना प्रासंगिक है कि केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के अनुसार केन्द्रीय सरकार ने विचारण न्यायालय के निष्कर्षों और परिणामों पर विचार करने के पश्चात् यह विवेकपूर्ण और सुविचारित विनिश्चय किया कि विचारण न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध अपील फ़ाइल करने का कोई भी आधार साबित नहीं किया गया था ।

6. तथापि, राज्य सरकार ने तारीख 17 फरवरी, 2007 को पटना उच्च न्यायालय के समक्ष तारीख 18 दिसम्बर, 2006 के दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध अपील करने की विशेष इजाजत फाइल की । अभियुक्तों को क्रमशः प्रत्यर्थी सं. 1 और प्रत्यर्थी सं. 2 के रूप में दर्शाया गया था और केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो को प्रत्यर्थी सं. 3 के रूप में पक्षकार बनाया गया था । उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने प्रत्यर्थी को यह कारण दर्शाने की सूचना जारी की थी कि अपील करने की विशेष इजाजत प्रदान क्यों न कर दी जाए । प्रत्यर्थी सं. 1 और प्रत्यर्थी सं. 2 की ओर से इसके प्रत्युत्तर में राज्य सरकार द्वारा अपील फाइल करने के संबंध में प्रारंभिक आक्षेप फाइल किया गया था । अपील फाइल करने के बारे में प्रत्यर्थी सं. 1 और प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा उठाए गए प्रारंभिक आक्षेप का प्रत्यर्थी सं. 3 (केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो) द्वारा समर्थन किया गया था । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने अपील की संधार्यता के प्रश्न के संबंध में दी गई दलीलों की सुनवाई की और अपने तारीख 20 सितम्बर, 2007 के आदेश द्वारा प्रारंभिक आक्षेप को उलट दिया और यह अभिनिर्धारित किया कि राज्य सरकार द्वारा फाइल की गई अपील संधार्य थी । इसी आदेश के विरुद्ध विशेष इजाजत लेकर दो अपीलें फाइल की गई हैं । इन दोनों अपीलों में से एक अपील अभियुक्तों द्वारा और दूसरी अपील केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा फाइल की गई है ।

7. हमने अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल श्री राम

जेठमलानी (अभियुक्तों की ओर से) और विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल श्री ए. मरियारपुथम (केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो की ओर से) तथा राज्य सरकार की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल श्री एल. नागेश्वर राव की सुनवाई की ।

8. श्री राम जेठमलानी ने यह दलील दी कि दोषमुक्ति के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील फाइल करने संबंधी राज्य सरकार की सक्षमता आरोपपत्र की तारीख को प्रवृत्त विधि, अर्थात् वर्ष 2005 से पूर्व यथा-विद्यमान 1973 की संहिता की धारा 378 द्वारा अवधारित की जानी चाहिए । उसने यह दलील दी कि धारा 378(1) में के महत्वपूर्ण शब्द ये हैं : "उपधारा (2) में जैसा उपबंधित है, उसके सिवाय" और इन शब्दों द्वारा जो कुछ उपधारा (2) के अंतर्गत आता है उसे उपधारा (1) के कार्यक्षेत्र से बाहर रखा गया है । उसके अनुसार, उपधारा (2) में "भी" शब्द अपील के सारवान् अधिकार का प्रयोग करने की पद्धति के प्रतिनिर्देश करता है; परिवर्तित संदर्भ में "भी" शब्द से अभिप्रेत है "इसी तरह" और उसका अर्थ यह है कि केन्द्रीय सरकार भी लोक अभियोजक को अपील उपस्थित करने का अनुदेश दे सकती है; उसे भारत के राष्ट्रपति द्वारा या राज्य के लिए राज्य के राज्यपाल द्वारा हस्ताक्षरित वकालतनामा फाइल नहीं करना होता है । विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता ने यह दलील दी कि उच्च न्यायालय ने उपधारा (2) में के "भी" शब्द को असम्यक् महत्व देकर धारा 378 की उपधारा (1) में के आरंभिक महत्वपूर्ण शब्दों को पूर्णतः अनावश्यक और निरर्थक बना दिया है जिससे विधानमंडल का आशय विफल हो गया है । इस प्रकार, उसने यह दलील दी कि न्यायालय को दो मार्गों में से एक मार्ग अपनाना चाहिए, अर्थात् (i) शब्द को उसका कोई ऐसा अन्य अर्थ देना जो कि शब्द का है और उसका प्रभावशाली शब्दों के प्रभाव के साथ सामंजस्य बिठाना या (ii) उस शब्द को निरर्थक अतिरेक के रूप में अस्वीकार करना ।

9. विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल श्री राम जेठमलानी ने **एकनाथ शंकरराव मुक्कावर** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय के प्रतिनिर्देश किया और यह दलील दी कि इस न्यायालय द्वारा धारा 377 का किया गया अर्थान्वयन, जिसमें समरूप शब्द आते हैं, धारा 378 के अर्थान्वयन को भी लागू होना चाहिए । उसने यह दलील दी कि उच्च न्यायालय द्वारा **खेमराज** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[2] वाले मामले में इस

---

[1] [1978] 3 उम. नि. प. 135 = (1977) 3 एस. सी. सी. 25.

[2] [1976] 4 उम. नि. प. 24 = (1976) 1 एस. सी. सी. 385.

न्यायालय के विनिश्चय का जो अवलंब लिया गया था वह भ्रामक था क्योंकि उक्त मामला धारा 378 के अर्थान्वयन को लागू नहीं होता है चूंकि दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 (जिसे संक्षेप में "1898 की संहिता" कहा गया है) की धारा 417 में "अन्यथा उपबंधित के सिवाय" शब्द विद्यमान नहीं थे और उस मामले में की गई मताभिव्यक्तियां न तो विनिश्चयाधार हैं और न ही इतरोक्तियां हैं ।

10. अंततः, श्री राम जेठमलानी ने यह दलील दी कि यदि राज्य सरकार और केन्द्रीय सरकार द्वारा कार्यपालक शक्तियों के प्रयोग के संबंध में परस्पर-विरोध हो तो भारत के संविधान के अनुच्छेद 162 के परन्तुक के आधार पर केन्द्रीय सरकार का विनिश्चय अभिभावी होगा ।

11. केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल श्री ए. मरियारपुथम ने श्री राम जेठमलानी के तर्कों को अंगीकार किया । उसने आगे यह दलील दी कि धारा 378 में "उपधारा (2) में जैसा उपबंधित है उसके सिवाय" शब्द जोड़कर विधानमंडल ने 1898 की संहिता की तत्कालीन धारा 417 में परिवर्तन किए और उपधारा (2) के अंतर्गत आने वाले वर्ग के मामलों को उपधारा (1) के कार्यक्षेत्र से बाहर रखने संबंधी अपने आशय को स्पष्ट कर दिया ।

12. दूसरी ओर, राज्य सरकार की ओर से विद्वान् काउन्सेल श्री एल. नागेश्वर राव ने राज्य सरकार द्वारा फाइल की गई अपील की संधार्यता को कायम रखने संबंधी उच्च न्यायालय के दृष्टिकोण का जोरदार समर्थन किया । उसने यह दलील दी कि अपील का अधिकार कानून का सृजन है और इस प्रश्न कि क्या अपील का अधिकार है अथवा नहीं, कानून के उपबंध के निर्वचन के आधार पर विचार करना होगा न कि औचित्य या किसी अन्य विचारणा के आधार पर । उसके अनुसार, जब कानून की भाषा स्पष्ट और असंदिग्ध हो तब निर्वचन का शाब्दिक नियम अपनाना होगा और न्यायालय को कानून में प्रयुक्त शब्दों को प्रभावी करना चाहिए और न्यायालयों के लिए इस आधार पर कि ऐसा अर्थान्वयन अधिनियम के अभिकथित उद्देश्य और उसकी नीति से अधिक संगत है, काल्पनिक अर्थान्वयन अंगीकृत करने की या साम्या लोक हित पर विचार करने की और विधानमंडल के आशय की ईप्सा करने की स्वतंत्रता नहीं होगी । उसने यह दलील दी कि उपधारा (1) में "किसी मामले में" अभिव्यक्ति और उपधारा (2) में "भी" शब्द का प्रयोग करने से यह स्पष्ट उपदर्शित होता है कि विधानमंडल का आशय यह था कि साधारण नियम यह होगा कि राज्य

सरकार किसी भी और प्रत्येक मामले में (जिसमें उपधारा (2) के अंतर्गत आने वाले मामले भी हैं) अपील फाइल कर सकेगी और केन्द्रीय सरकार उपधारा (2) के अंतर्गत आने वाले किसी मामले में भी अतिरिक्त रूप से अपील फाइल कर सकेगी । श्री एल. नागेश्वर राव ने यह दलील दी कि अपीलार्थियों द्वारा "उपधारा (2) में जैसा उपबंधित है उसके सिवाय" अभिव्यक्ति का जो निर्वचन करने की ईप्सा की है वह तर्कसम्मति और इस उपबंध की स्पष्ट भाषा के अनुसार नहीं है और ऐसे निर्वचन के परिणामस्वरूप उपधारा (1) में आने वाली "किसी मामले में" अभिव्यक्ति और उपधारा (2) में आने वाला "भी" शब्द अनावश्यक और निरर्थक हो जाएगा । उसने इस बात पर जोर दिया कि किसी कानून में प्रयुक्त किसी शब्द या अभिव्यक्ति के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि वह अनावश्यक या अतिशय हो गई है; यह कि निर्वचन के मामलों में किसी को भी एक शब्द पर अधिक केन्द्रित नहीं रहना चाहिए और अन्य शब्दों पर पर्याप्त रूप से कम ध्यान नहीं देना चाहिए और कानून में किसी उपबंध और धारा में के किसी शब्द का अर्थान्वयन अकेले नहीं किया जा सकता और प्रत्येक उपबंध और प्रत्येक शब्द का परिशीलन साधारण तौर पर और उस संदर्भ में किया जाना चाहिए जिसमें उसका प्रयोग किया गया है ।

13. श्री एल. नागेश्वर ने **एकनाथ शंकरराव मुक्कावर** (उपर्युक्त) वाले मामले का अवलंब लेते हुए यह दलील दी कि इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि धारा 377 की उपधारा (2) में "भी" शब्द का जैसाकि धारा 378 की उपधारा (2) में अंतर्विष्ट है, प्रयोग न होने पर राज्य सरकार धारा 377(2) के अंतर्गत आने वाले किसी मामले में अपील फाइल करने के लिए असक्षम थी और अब संसद् ने, इस न्यायालय द्वारा इंगित कमी का उपचार करने की दृष्टि से 1978 के अधिनियम सं. 45 द्वारा धारा 377(2) में संशोधन कर दिया, जिससे कि उसमें "भी" शब्द शामिल किया जा सके और उसे तात्विक रूप से धारा 378(2) के उपबंधों के समान बनाया जा सके । उसने उक्त संशोधन के उद्देश्यों और कारणों के कथन के प्रति निर्देश किया और यह दलील दी कि उक्त संशोधन के पश्चात् राज्य सरकार भी धारा 377(2) के अंतर्गत आने वाले किसी मामले में अपील फाइल करने के लिए सक्षम है । विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल ने इस बात पर जोर दिया कि चूंकि धारा 377 और धारा 378 के उपबंध अब तात्विक रूप से समान हैं इसलिए धारा 378 का भी वही निर्वचन किए जाने की आवश्यकता है ।

14. विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल श्री एल. नागेश्वर ने प्रबल रूप से इस बात पर जोर दिया कि अपीलार्थियों द्वारा जो निर्वचन करने की ईप्सा की गई है उसके परिणामस्वरूप असंगति पैदा हो जाएगी क्योंकि (i) ऐसे मामले में भी जिसमें राज्य सरकार दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन अधिनियम, 1946 (जिसे संक्षेप में '1946 का अधिनियम' कहा गया है) की धारा 6 के अधीन अन्वेषण करने का अनुरोध करती है और उसे अनुज्ञात करती है और अभियोजन का संचालन राज्य सरकार द्वारा नियुक्त लोक अभियोजक द्वारा किया जाता है वहां राज्य सरकार दोषमुक्ति की दशा में अपील फाइल करने की हकदार नहीं होगी किन्तु उसे इस प्रयोजन के लिए केन्द्रीय सरकार से अनुरोध करना होगा (जिसकी अन्वेषण या मामले में कोई भूमिका नहीं है और न ही उससे कोई संबंध है); और (ii) 1973 की संहिता की धारा 377 के अभिव्यक्त संशोधन को ध्यान में रखते हुए जिससे कि राज्य सरकार को वहां भी अपील फाइल करने के लिए समर्थ बनाया जा सके जहां अन्वेषण केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो या केन्द्रीय अभिकरण द्वारा किया गया था, राज्य सरकार अपर्याप्त दंडादेश अधिनिर्णीत किए जाने की दशा में अपील फाइल करने के लिए सक्षम होगी किन्तु समरूप मामले में जिसके परिणामस्वरूप दोषमुक्ति होती है तब राज्य सरकार धारा 378 के अधीन अपील फाइल करने में समर्थ नहीं होगी ।

15. दंड प्रक्रिया संहिता, 1861 की धारा 407 में दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील प्रतिषिद्ध किया गया था । प्रथम बार दंड प्रक्रिया संहिता, 1872 में दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध सरकार द्वारा अपील किए जाने का उपबंध किया गया (धारा 272) । उक्त उपबंध को दंड प्रक्रिया संहिता, 1882 की धारा 417 में पुनः अधिनियमित किया गया था । दोषमुक्ति की दशा में अपील करने से संबंधित उपबंध 1898 की संहिता की धारा 417 में बनाए रखा गया था । 1898 की संहिता (1955 के संशोधन अधिनियम सं. 26 द्वारा यथा-संशोधित) में दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध अपील करने से संबंधित उपबंध निम्नलिखित रूप में है :–

*"धारा 417. **दोषमुक्ति की दशा में अपील** – (1) उपधारा (5) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, राज्य सरकार किसी मामले में लोक

---

*-अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :–

"S.417. **Appeal in case of acquittal**– (1) Subject to the provisions of sub-section (5), the State Government may, in

अभियोजक को उच्च न्यायालय से भिन्न किसी न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति के मूल या अपीली आदेश से अपील उपस्थित करने का निदेश दे सकती है ।

(2) यदि ऐसा दोषमुक्ति का आदेश किसी ऐसे मामले में पारित किया जाता है जिसमें अपराध का अन्वेषण दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन अधिनियम, 1946 के अधीन गठित दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन द्वारा किया गया है तो केन्द्रीय सरकार भी लोक अभियोजक को दोषमुक्ति के आदेश से उच्च न्यायालय में अपील उपस्थित करने का निदेश दे सकती है ।

(3) यदि दोषमुक्ति का ऐसा आदेश परिवाद पर संस्थित किसी मामले में पारित किया गया है और उच्च न्यायालय, परिवादी द्वारा उसमें इस निमित्त आवेदन किए जाने पर, दोषमुक्ति के आदेश की अपील करने की विशेष इजाजत देता है तो परिवादी ऐसी अपील उच्च न्यायालय में उपस्थित कर सकता है ।

(4) दोषमुक्ति के आदेश से अपील करने की विशेष इजाजत दिए जाने के लिए उपधारा (3) के अधीन कोई आवेदन उच्च न्यायालय द्वारा, साठ दिन की समाप्ति के पश्चात् ग्रहण नहीं किया जाएगा ।

---

any case, direct the Public Prosecutor to present an appeal to the High Court from an original or appellate order of acquittal passed by any Court other than a High Court.

(2) If such an order of acquittal is passed in any case in which the offence has been investigated by the Delhi Special Police Establishment constituted under the Delhi Special Police Establishment Act, 1946, the Central Government may also direct the Public Prosecutor to present an appeal to the High Court from the order of acquittal.

(3) If such an order of acquittal is passed in any case instituted upon complaint and the High Court, on an application made to it by the complainant in this behalf, grants special leave to appeal from the order of acquittal the complainant may present such an appeal to the High Court.

(4) No application under sub-section (3) for the grant of special leave to appeal from an order of acquittal shall be entertained by the High Court after the expiry of sixty days from the date of that order of acquittal.

(5) यदि किसी मामले में दोषमुक्ति के आदेश से अपील करने की विशेष इजाजत दिए जाने के लिए उपधारा (3) के अधीन कोई आवेदन नामंजूर किया जाता है तो उस दोषमुक्ति के आदेश से उपधारा (1) के अधीन कोई अपील नहीं होगी ।"

16. 1973 की संहिता में दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध अपील (किए जाने का उपबंध) कुछ उपांतरणों सहित बनाए रखा गया है । धारा 378 की उपधारा (1) "उपधारा (2) में जैसा उपबंधित है उसके सिवाय" शब्दों से आरंभ होती है । विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल ने अपने तर्कों में मुख्य रूप से जिस बात पर बल दिया था वह उपधारा (1) में आरंभिक शब्द "उपधारा (2) में जैसा उपबंधित है उसके सिवाय" और "किसी मामले में" वाक्यांश और उपधारा (2) में के "भी" शब्द के चारों ओर केन्द्रित थी ।

17. बहुत पहले, वर्ष 1766 में पार्कर, सी. बी. ने **राबर्ट मिशेल** बनाम **सोरेन टोरप**[1] वाले मामले में इस नियम को मान्यता दी थी कि संसद् के अधिनियमों की प्रतिपादना करते समय, जहां शब्द अभिव्यक्त, साधारण और स्पष्ट हों वहां उन शब्दों को, तब तक उनके असली और स्वाभाविक महत्त्व और अर्थ के अनुसार समझा जाना चाहिए जब तक कि ऐसी प्रतिपादना से किसी पश्चात्वर्ती खंड के कारण अधिनियम में विरोधाभास या असंगति पैदा न होती हो जिससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि संसद् का आशय अन्यथा था; और यह दंड संबंधी तथा अन्य अधिनियमों की बाबत भी लागू होता है ।

18. पार्कर बी. ने **बेके** बनाम **स्मिथ**[2] वाले मामले में निम्नलिखित नियम कथित किया :–

"किसी कानून के अर्थान्वयन के लिए यह अत्यंत उपयोगी नियम है कि उसमें प्रयुक्त शब्दों का तब तक साधारण अर्थ और व्याकरणीय अर्थान्वयन किया जाना चाहिए जब तक कि वह स्वयं कानून से प्रकट विधानमंडल के आशय से भिन्न नहीं है या जिसके

---

(5) If, in any case, the application under sub-section (3) for the grant of special leave to appeal from an order of acquittal is refused, no appeal from that order of acquittal shall lie under sub-section (1)."

[1] (1766) पार्कर 227.

[2] (1836) 2 मीसन एंड वैल्सबी 191.

परिणामस्वरूप. कोई प्रत्यक्ष असंगति या प्रतिकूलता उत्पन्न नहीं होती है और उस दशा में भाषा में फेरफार या उपांतरण किया जा सकता है जिससे कि ऐसी असुविधा से बचा जा सके किन्तु इससे अधिक नहीं किया जा सकता है ।"

19. **अटर्नीजनरल** बनाम **लाकवुड**[1] वाले मामले में कानूनों के अर्थान्वयन से संबंधित नियम को निम्नलिखित शब्दों में प्रतिपादित किया गया था :–

"......मेरे मतानुसार, सभी कानूनों के, चाहे वे दंड संबंधी हों या उपचार संबंधी, अर्थान्वयन के संबंध में विधि संबंधी नियम, जो कि इसके अर्थान्वयन को भी लागू होता है, यह है कि उनका अर्थान्वयन तब तक उन साधारण, शाब्दिक और व्याकरणीय अर्थों में किया जाए जिनमें वे अभिव्यक्त किए गए हैं जब तक कि उस अर्थान्वयन के परिणामस्वरूप अधिनियम के प्रकट प्रयोजन का सरल और स्पष्ट विरोध न होता हो या उससे किसी प्रकार की सुस्पष्ट और प्रत्यक्ष असंगति पैदा न होती हो ।....."

20. **ससेक्स पीरेज**[2] वाले मामले में हाउस आफ लार्ड्स ने माननीय मुख्य न्यायमूर्ति टिंडल के माध्यम से संसद् के अधिनियम के अर्थान्वयन संबंधी इस नियम का कथन किया कि उनका अर्थान्वयन संसद् के, जिसने अधिनियम पारित किया है, आशय के अनुसार किया जाना चाहिए । यदि कानून के शब्द स्वयमेव सुस्पष्ट और असंदिग्ध हैं तो उन शब्दों को उनके स्वाभाविक और साधारण अर्थों में प्रतिपादित करने के सिवाय कुछ और अर्थ लगाना आवश्यक नहीं है । ऐसे मामले में स्वयं शब्द विधानमंडल के आशय को भलीभांति घोषित करते हैं ।

21. **भारत संघ और एक अन्य** बनाम **हंसोली देवी और अन्य**[3] वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान पीठ ने **ससेक्स पीरेज** (उपर्युक्त) वाले मामले में माननीय मुख्य न्यायमूर्ति टिंडल द्वारा प्रतिपादित नियम का अनुमोदन किया और विधिक स्थिति का कथन इस प्रकार किया :–

"किसी कानून के अर्थान्वयन का यह मूलभूत सिद्धांत है कि जब

---

[1] (1842) 9 मीसन एंड वैल्सबी 378.

[2] (1844) 9 क्लार्क एंड फिन्नेली 85.

[3] (2002) 7 एस. सी. सी. 273.

कानून की भाषा साधारण और असंदिग्ध हों तब न्यायालय को कानून में प्रयुक्त शब्दों को प्रभावी करना चाहिए और न्यायालय इस आधार पर किसी काल्पनिक अर्थान्वयन को अंगीकार करने के लिए स्वतंत्र नहीं होंगे कि ऐसा अर्थान्वयन अधिनियम के अभिकथित उद्देश्य और उसकी नीति के अधिक संगत है । किर्कनेस **बनाम** जान हडसन एंड कंपनी लिमिटेड [(1955) 2 आल इंग्लैंड ला रिपोर्टर] वाले मामले में लार्ड रीड ने यह इंगित किया कि "संदिग्ध" का अर्थ क्या है और यह अभिनिर्धारित किया कि :–

> "कोई उपबंध मात्र इस कारण संदिग्ध नहीं होता है कि उसमें ऐसा शब्द अंतर्विष्ट है जिसका भिन्न-भिन्न संदर्भ में भिन्न-भिन्न अर्थ संभव है । कहीं भी कितना ही लंबा ऐसा कोई वाक्य पाना कठिन है जिसमें ऐसा कोई शब्द न हो । मेरे निर्णयानुसार, कोई उपबंध केवल तभी संदिग्ध होता है यदि उसमें ऐसा कोई शब्द या वाक्यांश होता है जो उस विशिष्ट संदर्भ में एक से अधिक अर्थान्वयन में समर्थ होता है ।"

निस्संदेह, यह सही है कि यदि कानूनों की भाषा के साधारण अर्थान्वयन का परिशीलन करने के परिणामस्वरूप विसंगतियां, अन्याय और असंगतियां पैदा होती हैं तब न्यायालय उस प्रयोजन का परिशीलन कर सकता है जिसके लिए कानून लाया गया है और उसका ऐसा अर्थान्वयन करने का प्रयास करेगा जो कि कानून के प्रयोजन को पूरा करेगा । मुख्य न्यायमूर्ति पतंजलि शास्त्री ने अश्विनी कुमार घोष **बनाम** अरविन्द बोस (ए. आई. आर. 1952 एस. सी. 369) वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया था कि किसी कानून में शब्दों को यदि कानून के अभिप्राय के भीतर प्रकट परिस्थितियों में उनका समुचित उपयोजन हो सकता है तो उन्हें अनुपयुक्त या असंबद्ध मानकर उनकी अनदेखी करना अर्थान्वयन का उचित सिद्धांत नहीं है । क्यूबेक रेलवे, लाइट हीट एंड पावर कंपनी लिमिटेड **बनाम** वेंड्री (ए. आई. आर. 1920 प्रिवी कौंसिल 181) वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया था कि विधानमंडल के बारे में यह समझा जाता है कि वह अपने शब्दों को बेकार नहीं करता या व्यर्थ ही कुछ नहीं कहता और ऐसा कोई अर्थान्वयन जिसके कारण विधानमंडल अनावश्यक हो जाता है, बाध्यकारी कारणों के सिवाय स्वीकार नहीं किया जाएगा । इसी प्रकार, किसी कानून में ऐसे कोई शब्द जोड़ना,

जो उसमें नहीं हैं, तब तक अनुज्ञेय नहीं है जब तक कि शाब्दिक अर्थान्वयन किए जाने पर कानून का एक भाग अर्थहीन हो जाता है । किन्तु इससे पूर्व कि अधिनियम में के किसी लोप को ठीक करने के लिए कोई शब्द जोड़े जाएं, निश्चित रूप से यह कहना संभव होना चाहिए कि ये शब्द प्रारूपकार द्वारा अंतःस्थापित किए गए होते और विधानमंडल द्वारा उनका अनुमोदन किया गया होता यदि विधेयक के विधि के रूप में पारित होने से पूर्व इस लोप की ओर उनका ध्यान दिलाया गया होता । कभी-कभी विधानमंडल का आशय स्पष्ट पाया जाता है किन्तु कानून में निश्चित शब्द पुरःस्थापित करने में प्रारूपकार की अकुशलता के परिणामस्वरूप भाषा की अप्रभावकारिता प्रकट होती है और ऐसी स्थिति में, न्यायालय के लिए फालतू शब्दों को नामंजूर करना अनुज्ञेय हो सकता है जिससे कि कानून को प्रभावी बनाया जा सके..... ।"

22. जैसी कि ऊपर अवेक्षा की गई है, धारा 378 की उपधारा (1) "उपधारा (2) में जैसा उपबंधित है उसके सिवाय" शब्दों से आरंभ होती है । ये शब्द महत्वहीन नहीं हैं । अव्यवहित प्रश्न यह है कि इन शब्दों को क्या अर्थ दिया जाना चाहिए । कंसाइज़ आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी (दसवां संस्करण, पुनरीक्षित) में "सिवाय" शब्द को इस प्रकार परिभाषित किया गया है :–

"सिवाय – औपचारिक या काव्यात्मक/साहित्यिक सिवाय, से भिन्न...;"

23. वैबस्टर कंप्रेहेंसिव डिक्शनरी (इंटरनेशनल संस्करण) में "सिवाय" शब्द को निम्न प्रकार परिभाषित किया गया है :–

"सिवाय – छोड़कर; किन्तु -1. छोड़कर; किन्तु 2, पुरातन तब तक.... जब तक"

24. ब्रयान ए. गार्नर कृत ए डिक्शनरी आफ माडर्न यूसेज (1987) में यह कहा गया है कि जब "सिवाय" का प्रयोग "छोड़कर" के लिए किया जाता है तब वह पुरातनवाद है । इसका परिहार किया जाना चाहिए यद्यपि जैसा कि अनुसृत उदाहरणों से स्पष्ट होता है, यह अब भी विधिक गद्य में सामान्य है, उदाहरणार्थ, क्षेत्राधिकार विधि संबंधी नियम एक पैनल को दूसरे पैनल के निर्णय को उलटने से प्रतिषिद्ध करता है सिवाय (छोड़कर पढ़ें) जब कोई पश्चात्वर्ती कानून या उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय के कारण

लागू विधि में परिवर्तन आ गया हो ।

25. **विल्लियम्स** बनाम **मिलोटिन**[1] वाले मामले में आस्ट्रेलिया के उच्च न्यायालय ने "इस अधिनियम में जैसा उपबंधित है उसके सिवाय" शब्दों का अर्थान्वयन करते समय यह कहा था :–

> "…. वास्तव में, "इस अधिनियम में जैसा उपबंधित है उसके सिवाय" शब्द "छोड़कर" – या "सिवाय"– "जैसा कि इसमें इसके पश्चात् छोड़ दिया गया है" शब्दों के प्रतिबिंब हैं ।"

26. धारा 378 छह उपधाराओं में विभाजित है । उपधारा (1) में यह उपबंधित है कि राज्य सरकार लोक अभियोजक को उच्च न्यायालय से भिन्न किसी न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति के मूल या अपीली आदेश से या पुनरीक्षण में सेशन न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति के आदेश से उच्च न्यायालय में अपील उपस्थित करने का निदेश दे सकती है । यह "उपधारा (2) में जैसा उपबंधित है उसके सिवाय" शब्दों से आरंभ होती है और उसके बाद "और उपधारा (3) और उपधारा (5) के उपबंधों के अधीन रहते हुए" शब्द आते हैं । उपधारा (2) मामलों के दो वर्ग के प्रति निर्देश करती है, अर्थात् (i) वे मामले जिनमें अपराध का अन्वेषण 1946 के अधिनियम के अधीन गठित दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन द्वारा किया गया है और (ii) वे मामले जिनमें अपराध का अन्वेषण 1973 की संहिता से भिन्न किसी केन्द्रीय अधिनियम के अधीन किसी अपराध का अन्वेषण करने के लिए सशक्त किसी अन्य अभिकरण द्वारा किया गया है और उसमें यह उपबंध है केन्द्रीय सरकार भी लोक अभियोजक को दोषमुक्ति के आदेश से उच्च न्यायालय में अपील उपस्थित करने का निदेश दे सकती है । मामलों के पूर्वोक्त दो वर्गों में केन्द्रीय सरकार द्वारा ऐसी अपील उपधारा (3) में अंतर्विष्ट उपबंधों के अधीन है । उपधारा (3) में यह उपबंध है कि उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन कोई अपील उच्च न्यायालय की इजाजत के बिना ग्रहण नहीं की जाएगी । जहां दोषमुक्ति का आदेश परिवाद पर संस्थित किसी मामले में पारित किया गया है वहां उपधारा (4) में यह उपबंधित है कि परिवादी दोषमुक्ति के आदेश से अपील करने की विशेष इजाजत के लिए आवेदन कर सकेगा और यदि ऐसी इजाजत दे दी जाती है तो उसके द्वारा उच्च न्यायालय में अपील प्रस्तुत की जा सकेगी । उपधारा (5) में परिसीमा विहित की गई है । जहां तक उपधारा (4) के

---

[1] 97 सी. एल. आर. 465.

अंतर्गत आने वाले मामलों का संबंध है, जहां परिवादी कोई लोक सेवक है वहां विहित परिसीमा दोषमुक्ति के आदेश की तारीख से छह मास है और अन्य सभी मामलों में, जिनमें उपधारा (1) और उपधारा (2) के अंतर्गत आने वाले मामले भी हैं, परिसीमा दोषमुक्ति के आदेश से साठ दिन की अवधि तक है । उपधारा (6) में यह उपबंध किया गया है कि यदि दोषमुक्ति के आदेश से अपील करने की विशेष इजाजत दिए जाने के लिए उपधारा (4) के अधीन कोई आवेदन नामंजूर किया जाता है तो दोषमुक्ति के आदेश से उपधारा (1) के अधीन या उपधारा (2) के अधीन कोई अपील नहीं होगी । हमने इस उपबंध का संपूर्ण सिंहावलोकन करने के लिए धारा 378 का समग्र रूप से सर्वेक्षण किया है ।

27. आरंभिक शब्द "उपधारा (2) में जैसा उपबंधित है उसके सिवाय" अपवाद की प्रकृति के हैं और उनका आशय उपधारा (2) में उल्लिखित वर्ग के मामलों को उपधारा (1) के मुख्य भाग के प्रवर्तन से अपवर्जित करना है । इन शब्दों का इस संदर्भ में कोई और अर्थ नहीं है किन्तु वे उपधारा (1) के प्रवर्तन को विशेषित करते हैं और उसके कार्यक्षेत्र से उपधारा (2) में निर्दिष्ट मामलों के प्रकार को बाहर रखते हैं, अर्थात् (i) वे मामले जिसमें अपराध का अन्वेषण 1946 के अधिनियम के अधीन गठित दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन द्वारा किया गया है और (ii) वे मामले जिसमें अपराध का अन्वेषण 1973 की संहिता से भिन्न किसी केन्द्रीय अधिनियम के अधीन किसी अपराध का अन्वेषण करने के लिए सशक्त किसी अन्य अभिकरण द्वारा किया गया है । धारा 378 का अर्थान्वयन ऐसी रीति में करने से, जिसमें उपधारा (2) में उल्लिखित मामलों के दो प्रवर्गों के सिवाय प्रत्येक मामले में राज्य सरकार द्वारा दोषमुक्ति के आदेश से अपील करना अनुज्ञात किया जाता है, आरंभिक शब्दों में अभिव्यक्त अपवाद (खंड) को पूर्णतः प्रभावी किया जाएगा । जैसी कि ऊपर अवेक्षा की गई है, "उपधारा (2) में जैसा उपबंधित है, उसके सिवाय" शब्द 1973 की संहिता में जोड़े गए थे; 1898 की संहिता की धारा 417 में ये शब्द नहीं थे । अर्थान्वयन का यह सुविदित नियम यह है कि शब्दों और वाक्यांशों में किए गए सभी परिवर्तनों के बारे में यह माना जा सकता है कि वे सुविचारित हैं और पूर्व-विद्यमान विधि को, जैसे ही शब्दों में किए गए परिवर्तन लागू होते हैं, सीमित, विशेषित या परिवर्धित करने के प्रयोजनार्थ हैं । ऐसे किसी अर्थान्वयन से बचना चाहिए जो उस अपवाद (खंड) को, जिससे धारा आरंभ होती है, निरर्थक और अतिशय बना देता है । यदि हम धारा 378 की उपधारा (1)

और उपधारा (2) का वही निर्वचन करते हैं जिसका राज्य सरकार ने दावा किया है तो हमें यह कहना होगा कि इस बात के होते हुए भी कि शिकायत राज्य सरकार या उसके अधिकारियों द्वारा दर्ज नहीं की गई थी; यह कि अन्वेषण उसके पुलिस स्थापन द्वारा नहीं किया गया था; यह कि अभियोजन न तो राज्य सरकार द्वारा आरंभ किया गया था और न ही उसके द्वारा चालू रखा गया था; यह कि अभियोजक की नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा नहीं की गई थी; यह कि राज्य सरकार का दांडिक मामले से कोई संबंध नहीं है; यह कि अभियोजन आरंभ करने से उसे तर्कसम्मत रूप से पूरा करने तक सभी कदम दिल्ली पुलिस विशेष स्थापन द्वारा उठाए गए थे, फिर भी राज्य सरकार धारा 378(1) के अधीन दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध अपील फाइल कर सकती है । यह आरंभिक शब्दों में प्रतिबिंबित अपवाद (खंड) "उपधारा (2) में जैसा उपबंधित है, उसके सिवाय" को व्यर्थ, निरर्थक और अनावश्यक बनाने की कोटि में आएगा । यदि विधानमंडल का आशय उपधारा (2) में निर्दिष्ट वर्ग के मामलों सहित दोषमुक्ति के सभी मामलों में धारा 378(1) के अधीन राज्य सरकार को अपील करने का अधिकार देना था तो आरंभिक शब्दों में अपवाद (खंड) को सम्मिलित करना आवश्यक नहीं होता । इन शब्दों का प्रयोग किए बिना भी इस उद्देश्य की पूर्ति हो सकती थी क्योंकि 1898 की संहिता की तत्कालीन धारा 417 राज्य सरकार को दोषमुक्ति के सभी मामलों में अपील करने के लिए समर्थ बनाती थी जबकि उसकी उपधारा (2) में उल्लिखित दो प्रकार के मामलों में दोषमुक्ति के आदेश से अपील केन्द्रीय सरकार के निदेशाधीन भी फाइल की जा सकती थी ।

28. **बंगाल इम्मुनिटी कंपनी लिमिटेड** बनाम **बिहार राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में न्यायमूर्ति वेंकटरामा अय्यर ने निम्नलिखित रूप में मत व्यक्त किया था :–

> "... यह अर्थान्वयन का सुस्थापित नियम है कि जब किसी कानून का निरसन और पुनः अधिनियमन किया जाता है और निरसित कानून में के शब्द नए कानून में उद्धृत किए जाते हैं तब उनका निर्वचन उस अर्थ में किया जाना चाहिए जो अर्थ निरसित अधिनियम के अधीन न्यायिक रूप से उनका लगाया गया है क्योंकि विधानमंडल के बारे में यह माना जाता है कि वह उस अर्थान्वयन से अवगत है जो

---

[1] [1955] 2 एस. सी. आर. 603.

कि न्यायालयों ने उन शब्दों का किया है और जब वे उन्हीं शब्दों की पुनरावृत्ति करते हैं तब उनके बारे में यह माना जाना चाहिए कि उन्होंने उन निर्वचन को, जो कि न्यायालय द्वारा उनका किया गया है, विधानमंडल के आशय को सही रूप से प्रतिबिंबित करने वाला स्वीकार कर लिया है... ।"

29. तथापि, यदि पश्चात्वर्ती कानून में उसी भाषा का प्रयोग नहीं किया गया है जैसी कि वह पूर्ववर्ती कानून में थी तो परिवर्तन के बारे में यह माना जाना चाहिए कि वह सोच-विचार कर किया गया है । जी. पी. सिंह ने अपनी उत्कृष्ट कृति प्रिंसीपल्स ऑफ इंटरप्रेटेशन, 12वां संस्करण, 2010, पृष्ठ 310 पर विधि संबंधी निम्नलिखित कथन किया है :–

"जिस प्रकार किसी पश्चात्वर्ती कानून में उसी भाषा का प्रयोग करना, जो कि पूर्ववर्ती कानून में प्रयुक्त थी, तात्विक रूप से विधानमंडल के इस आशय का द्योतक है कि पश्चात्वर्ती कानून में इस प्रकार प्रयुक्त भाषा उसी अर्थ में प्रयोग की गई है जो कि पूर्ववर्ती कानून का था, इसी प्रकार पश्चात्वर्ती कानून में भाषा को बदलना तात्विक रूप से इस बात का द्योतक है कि निर्वचन में परिवर्तन आशयित है ।"

विद्वान् लेखक ने **डी. आर. फ्रेज़र एंड कंपनी लिमिटेड** बनाम **मिनिस्टर ऑफ नेशनल रेवेन्यू**[1] वाले मामले में लार्ड मैकमिलन की मताभिव्यक्तियों के प्रति भी निर्देश किया । "जब किसी संशोधनकारी अधिनियम में मूल कानून की भाषा में परिवर्तन किया जाता है तब उस परिवर्तन के बारे में यह माना जाना चाहिए कि वह सोच-विचार कर किया गया है ।"

30. इस बात को स्मरण रखना महत्वपूर्ण है कि इस न्यायालय ने **खेमराज** (उपर्युक्त) वाले मामले में 1898 की संहिता की धारा 417 का निम्नलिखित अर्थान्वयन किया है :–

"10. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 417 में, 1955 के संशोधन अधिनियम 26 से पूर्व राज्य सरकार के निदेश पर लोक अभियोजक द्वारा अपीलें उपस्थित करने का उपबंध था । 1955 के संशोधन द्वारा अनेक परिवर्तन पुरःस्थापित किए गए थे और उसमें ऐसे मामलों में जिनका अन्वेषण दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन द्वारा किया गया है

[1] ए. आई. आर. 1949 प्रिवी कौंसिल 120.

परिवादी के अनुरोध पर तथा केन्द्रीय सरकार के निदेश पर अपीलें करने का उपबंध था । दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 378 के अधीन दोषमुक्ति के विरुद्ध अपीलों के मामले में और परिवर्तन पुरःस्थापित किए गए थे जिनसे दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 484(1) के अधीन निरसन उपबंधों को ध्यान में रखते हुए, हमारा इस अपील में कोई संबंध नहीं है ।

11. दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन (जिसे संक्षेप में "स्थापन" कहा गया है), जो कि एक केन्द्रीय पुलिस बल है, का गठन दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन अधिनियम, 1946 (1946 का 25) (जिसे संक्षेप में दिल्ली अधिनियम कहा गया है) के अधीन किया गया था । इस अधिनियम की धारा 2 के अधीन केन्द्रीय सरकार दिल्ली अधिनियम की धारा 3 के अधीन यथा-अधिसूचित अपराधों या अपराधों के वर्ग के अन्वेषण के लिए एक विशेष पुलिस बल का गठन कर सकती है जिसे दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन कहा जाएगा । अधिनियम की धारा 4 के अधीन दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन का अधीक्षण केन्द्रीय सरकार में निहित है और विशेष पुलिस स्थापन का प्रशासन, केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त एक अधिकारी में निहित होगा, जो पुलिस महानिरीक्षक द्वारा प्रयोक्तव्य शक्तियों में से ऐसी शक्तियों का प्रयोग करेगा, जिन्हें केन्द्रीय सरकार विनिर्दिष्ट करे । धारा 5 के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा इस स्थापन की शक्तियों और अधिकारिता का विस्तारण राज्य के अन्य क्षेत्रों में, जो कि संघ-राज्यक्षेत्र नहीं है, किया जा सकता है । जब एक बार स्थापन के सदस्यों की शक्तियों और अधिकारिता का विस्तारण हो जाता है तब उसके सदस्य ऐसे कृत्यों का निर्वहन करते समय उस क्षेत्र के पुलिस बल के सदस्य समझे जाते हैं और उनमें उस पुलिस बल के सदस्यों की शक्तियां, कृत्य और विशेषाधिकार निहित होते हैं और वे उस बल से संबंधित पुलिस अधिकारी के दायित्वों के अध्यधीन होते हैं । पुलिस अधिकारी केन्द्रीय सरकार के आदेशों के भी अध्यधीन होता है और विस्तारित क्षेत्र में पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी की शक्तियों का प्रयोग करता है । धारा 6 के अधीन स्थापन के अधिकारी को राज्य में के किसी क्षेत्र में जो कि संघ राज्यक्षेत्र या रेल क्षेत्र नहीं है, शक्तियों और अधिकारिता का प्रयोग करने में समर्थ बनाने के लिए राज्य सरकार की सम्मति आवश्यक है ।

12. अतः, दिल्ली अधिनियम के अधीन अन्वेषण एक केन्द्रीय अन्वेषण होता है और संबंधित अधिकारी केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त अधिकारी के अधीक्षण के अधीन होते हैं । स्थापन का अधीक्षण केन्द्रीय सरकार के भी अधीन होता है । अतः, केन्द्रीय सरकार का संबंध स्थापन द्वारा मामलों के अन्वेषण और उसके अंतिम परिणाम से होता है । इसी पृष्ठभूमि में, वर्ष 1955 में धारा 417 में उपधारा (2) जोड़कर उसमें संशोधन किया गया था जिससे कि स्थापन द्वारा अन्वेषित मामलों में दोषमुक्ति के विरुद्ध केन्द्रीय सरकार के निदेशों पर भी अपील का उपबंध किया जा सके । दिल्ली अधिनियम के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए धारा 417 में उपधारा (2) पुरःस्थापित करना आवश्यक था जिससे कि यह केन्द्रीय अभिकरण, जिसका विनिर्दिष्ट अपराधों के अन्वेषण से एकमात्र और सन्निकट संबंध है, केन्द्रीय सरकार को समुचित मामलों में अपील का निदेश देने के लिए समावेदन कर सके ।

13. तथापि, इससे राज्य सरकार की भी अपीलें उपस्थित करने का निदेश देने की अधिकारिता वर्जित नहीं हो जाती है जब उसके लिए स्थापन द्वारा समावेदन किया जाता है । स्थापन या तो केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार को समावेदन कर सकता है । यह पूर्णतः प्रक्रिया संबंधी विषय है कि क्या वह राज़्य सरकार को सीधे समावेदन करता है या केन्द्रीय सरकार के माध्यम से या किसी विशिष्ट मामले में केवल केन्द्रीय सरकार को समावेदन करता है । यह भी पुनः प्रक्रिया संबंधी विषय होगा जब केन्द्रीय सरकार अपील करने का विनिश्चय करती है तब वह संहिता के अधीन नियुक्त लोक अभियोजक के माध्यम से राज्य सरकार को आवश्यक कार्यवाही करने के लिए अनुरोध करती है ।

14. धारा 417 की उपधारा (2) में 'भी' शब्द बहुत महत्वपूर्ण है । इस शब्द से यह प्रतीत होता है कि वह ऐसे मामलों में भी जिनमें अन्वेषण स्थापन द्वारा किया गया है, लोक अभियोजक को अपील उपस्थित करने का निदेश देने संबंधी राज्य सरकार की अधिकारिता को वर्जित नहीं करता । धारा 417 की उपधारा (1) साधारण निबंधनों में है और उसके कार्यक्षेत्र में सभी प्रकार के मामले आ जाएंगे चूंकि उस उपधारा में प्रयुक्त अभिव्यक्ति "किसी मामले में" है । हम किसी विशेष प्रकार के मामलों के संबंध में अपील संस्थित करने का निदेश

देने संबंधी राज्य सरकार की शक्ति में कोई परिसीमा नहीं पाते हैं। चूंकि धारा 417 की उपधारा (1) साधारण निबंधनों में है इसलिए उसका विस्तार व्यापक है। उपधारा (2) में उपयुक्त रूप से 'भी' शब्द का प्रयोग किया गया है जब केन्द्रीय सरकार को लोक अभियोजक को अपील करने का निदेश देने के अतिरिक्त शक्ति दी जाती है।"

31. संसद् ने 1973 की संहिता में दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध अपील करने के लिए कतिपय उपांतरणों सहित उपबंध पुनः अधिनियमित किए। उसने "उपधारा (2) में जैसा उपबंधित है उसके सिवाय" शब्द जोड़कर भाषा में परिवर्तन किया। इन शब्दों को जोड़कर भाषा में किए गए परिवर्तन से यह निष्कर्ष निकलता है कि विधानमंडल ने (1973 की संहिता की) धारा 378 में सोच-विचार कर परिवर्तन किए। हमें खेद है कि अपवाद (खंड) के तौर पर धारा 378(1) में जोड़े गए शब्दों का वही निर्वचन करके जो कि धारा 417 (1898 की संहिता) का किया गया है, उनकी अनदेखी नहीं की जा सकती है। वास्तव में, **खेमराज** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने इस बात की अवेक्षा की कि 1973 की संहिता की धारा 378 के अधीन दोषमुक्ति के विरुद्ध अपीलों के मामले में परिवर्तन पुरःस्थापित किए गए हैं किन्तु न्यायालय ने इन परिवर्तनों पर विचार नहीं किया क्योंकि उसका उस उपबंध से संबंध नहीं था। हमारी राय में, **खेमराज** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय का विनिश्चय लागू नहीं किया जा सकता क्योंकि धारा 417 (1898 की संहिता) और धारा 378 (1973 की संहिता) में प्रयुक्त भाषा तात्विक रूप से समान है।

32. तथापि, राज्य सरकार की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल द्वारा धारा 378 की उपधारा (2) में "भी" शब्द पर अधिक जोर दिया गया है। इस बात पर बल दिया गया था कि "भी" शब्द का प्रयोग करके लोक अभियोजक को उपधारा (2) के अंतर्गत आने वाले दो प्रकार के मामलों में दोषमुक्ति के आदेश से अपील फाइल करने का निदेश देने संबंधी राज्य सरकार की सक्षमता छीनी नहीं गई है बल्कि "भी" शब्द यह संकेत करता है कि केन्द्रीय सरकार भी लोक अभियोजक को उपधारा (2) में उल्लिखित वर्ग के मामलों में दोषमुक्ति के आदेश से अपील फाइल करने का निदेश दे सकती है। क्या "भी" शब्द का वही अर्थ है जैसी कि राज्य सरकार की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल ने दलील दी है ? कानूनों के अर्थान्वयन का एक नियम यह है कि कानून की भाषा को यथारूप मे पढ़ा जाना

चाहिए और ऐसे किसी अर्थान्वयन से बचना चाहिए जिसके परिणामस्वरूप शब्दों को अस्वीकार किया जाता है; विधान मंडल द्वारा प्रयुक्त प्रत्येक शब्द को अर्थ देने का प्रयास किया जाना चाहिए । तथापि, कानूनों के अर्थान्वयन का ऐसा नियम अपवादरहित नहीं है । **स्टोन** बनाम **येविल**[1] वाले मामले में न्यायमूर्ति ब्रेट ने निम्न प्रकार मत व्यक्त किया :–

> "उस खंड की दूसरी शाखा में "ऐसा" शब्द से प्रथमदृष्टया यह प्रतीत होगा कि वह क्रय की गई या ली गई भूमियों को लागू होता है किन्तु यदि इस प्रकार पठन किया जाता है तो यह असमीचीन है । अर्थान्वयन का सिद्धांत यह है कि यदि संभव हो तो संसद् के अधिनियम या अन्य दस्तावेज़ के प्रत्येक शब्द को अर्थ अवश्य दिया जाना चाहिए किन्तु यह कि यदि उसमें ऐसा कोई शब्द या वाक्यांश हो जिसे कोई समीचीन अर्थ नहीं दिया जा सकता है तो उसका अवश्य ही विलोप किया जाना चाहिए । अतः, मुझे यह प्रतीत होता है कि खंड के इस भाग में से "ऐसा" शब्द का अवश्य ही विलोप किया जाना चाहिए ।"

न्यायमूर्ति आर्चीबाल्ड ने न्यायमूर्ति ब्रेट से इस प्रकार सहमति व्यक्त की :–

> "किन्तु मैं अपने बंधु ब्रेट से इस संबंध में सहमत हूं कि अर्थान्वयन का यह सही सिद्धांत है कि जहां किसी कानून में या किसी अन्य लिखत या दस्तावेज़ में ऐसा कोई शब्द पाया जाता है जिसका संभावित रूप से कोई समीचीन अर्थ नहीं होता है वहां हम इस दृष्टि से कि आशय की पूर्ति हो जाए, न केवल उसका विलोप कर सकते हैं बल्कि अवश्य ही विलोप किया जाना चाहिए ।"

33. **साल्मन** बनाम **डनकोम्बे और अन्य**[2] वाले मामले में प्रिवी कौंसिल की ओर से निर्णय सुनाते हुए लार्ड हाब्हाउस ने निम्न प्रकार कथन किया :–

> "तथापि, यह अभिनिर्धारित करना एक गंभीर मामला है कि जब किसी कानून का मुख्य उद्देश्य स्पष्ट हो तब प्रारूपकार की अकुशलता या विधि की अनभिज्ञता के कारण वह अकृत हो जाएगा । न्यायालय के लिए ऐसे निष्कर्ष पर पहुंचना आवश्यक हो सकता है किन्तु

[1] (1875-76) एल. आर. 1 सी. पी. डी. 691.

[2] (1886) 11 अपील केसेज़ 627.

न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि इसे प्रयुक्त भाषा की आवश्यकता या आत्यांतिक असाध्यता के सिवाय किसी भी प्रकार न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता । उन्होंने अपने आप को इस बात पर विचार करने के लिए तैयार कर लिया है कि प्रथमतः, क्या विधानमंडल के मुख्य विषय के बारे में किसी सारवान् संदेह होने का सुझाव दिया जा सकता है और द्वितीयतः, धारा 1 के अंतिम नौ शब्द इतने अकाट्य हैं और शेष कानून को इतना सीमित करते हैं कि या तो संपूर्णतः या किसी अत्यंत महत्वपूर्ण विशिष्टि के संबंध में उसके प्रभाव को अकृत किया जा सके ।"

34. धारा 378 की उपधारा (1) में आने वाले आरंभिक शब्दों – "उपधारा (2) में जैसा उपबंधित है उसके सिवाय"– द्वारा मुख्य उद्देश्य और विधायी आशय स्पष्ट हो जाने के कारण, अर्थात्, राज्य सरकार को उपधारा (2) में वर्णित दो प्रकार के मामलों में दोषमुक्ति के आदेश से अपील फाइल करने के लिए दी गई साधारण शक्ति में बाधा डालने के लिए उपधारा (2) में "भी" शब्द का प्रयोग करने से कोई अर्थ नहीं निकलता । यदि उपधारा (2) में प्रयुक्त "भी" शब्द का अर्थान्वयन राज्य सरकार द्वारा सुझाई गई रीति में किया जाता है तो उसका परिणाम उपधारा (1) में के आरंभिक शब्दों को अकृत करना होगा और इससे इन शब्दों को उनके ऋजु व्यवहार से वंचित करना होगा । चूंकि उपधारा (1) के आरंभ में अपवाद (खंड) धारा 378 में अभिव्यक्त रूप से जोड़ा गया है और उपधारा (2) में आने वाले "भी" शब्द का उससे सामंजस्य स्थापित करना संभव नहीं है इसलिए हमें यह प्रतीत होता हैं कि "भी" शब्द को कोई समीचीन अर्थ नहीं दिया जा सकता है और उक्त शब्द को अतात्विक मानना होगा । हम इस तथ्य से अनभिज्ञ नहीं हैं कि उपधारा (2) में अधिनियमित "भी" शब्द को अतात्विक या असमीचीन घोषित करना अधिक संतोषप्रद नहीं है किन्तु "उपधारा (2) में जैसा उपबंधित है उसके सिवाय" शब्दों को उनके सही और स्पष्ट अर्थान्वयन से वंचित करना और भी असंतोषप्रद है । इस दृष्टि से कि उपधारा (1) के आरंभिक शब्दों में अभिव्यक्त रूप से कथित अपवाद (खंड) बनाए रखा जाए, यह आवश्यक है कि उपधारा (2) में आने वाले "भी" शब्द को अतात्विक माना जाए और हम तदनुसार अभिनिर्धारित करते हैं ।

35. धारा 378 की उपधारा (1) में "किसी मामले में" वाक्यांश से निस्संकोच "सभी मामलों में" अभिप्रेत है, किन्तु उक्त धारा के आरंभिक शब्द राज्य सरकार पर उपधारा (2) में उल्लिखित दो प्रकार के मामलों में

अपील फाइल करने का निदेश देने के संबंध में बाधा डालते हैं ।

36. 1973 की संहिता की धारा 2(प) में लोक अभियोजक की परिभाषा दी गई है जिससे धारा 24 के अधीन नियुक्त कोई व्यक्ति अभिप्रेत है और उसमें किसी लोक अभियोजक के निदेशों के अधीन कार्य करने वाला कोई व्यक्ति भी आता है । धारा 24 निम्नलिखित रूप में है :–

"24. **लोक अभियोजक** - (1) प्रत्येक उच्च न्यायालय के लिए, केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार उस उच्च न्यायालय से परामर्श के पश्चात्, यथास्थिति, केन्द्रीय या राज्य सरकार की ओर से उस उच्च न्यायालय में किसी अभियोजन, अपील या अन्य कार्यवाही के संचालन के लिए एक लोक अभियोजक नियुक्त करेगी और एक या अधिक अपर लोक अभियोजक नियुक्त कर सकती है ।

(2) केन्द्रीय सरकार किसी जिले या स्थानीय क्षेत्र में किसी मामले या किसी वर्ग के मामलों के संचालन के प्रयोजनों के लिए एक या अधिक लोक अभियोजक नियुक्त कर सकती है ।

(3) प्रत्येक जिले के लिए, राज्य सरकार एक लोक अभियोजक नियुक्त करेगी और जिले के लिए एक या अधिक अपर लोक अभियोजक भी नियुक्त कर सकती है :

परन्तु एक जिले के लिए नियुक्त लोक अभियोजक या अपर लोक अभियोजक किसी अन्य जिले के लिए भी, यथास्थिति, लोक अभियोजक या अपर लोक अभियोजक नियुक्त किया जा सकता है ।

(4) जिला मजिस्ट्रेट, सेशन न्यायाधीश के परामर्श से, ऐसे व्यक्तियों के नामों का एक पैनल तैयार करेगा जो, उसकी राय में, उस जिले के लिए लोक अभियोजक या अपर लोक अभियोजक नियुक्त किए जाने के योग्य है ।

(5) कोई व्यक्ति राज्य सरकार द्वारा उस जिले के लिए लोक अभियोजक या अपर लोक अभियोजक नियुक्त नहीं किया जाएगा जब तक कि उसका नाम उपधारा (4) के अधीन जिला मजिस्ट्रेट द्वारा तैयार किए गए नामों के पैनल में न हो ।

(6) उपधारा (5) में किसी बात के होते हुए भी, जहां किसी राज्य में अभियोजन अधिकारियों का नियमित काडर है वहां राज्य सरकार ऐसा काडर गठित करने वाले व्यक्तियों में से ही लोक

अभियोजक या अपर लोक अभियोजक नियुक्त करेगी :

परन्तु जहां राज्य सरकार की राय में ऐसे काडर में से कोई उपयुक्त व्यक्ति नियुक्ति के लिए उपलब्ध नहीं है वहां राज्य सरकार उपधारा (4) के अधीन जिला मजिस्ट्रेट द्वारा तैयार किए गए नामों के पैनल में से, यथास्थिति, लोक अभियोजक या अपर लोक अभियोजक के रूप में किसी व्यक्ति को नियुक्त कर सकती है ।

स्पष्टीकरण – इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए, –

(क) "अभियोजन अधिकारियों का नियमित काडर" से अभियोजन अधिकारियों का वह काडर अभिप्रेत है, जिसमें लोक अभियोजक का, चाहे वह किसी भी नाम से ज्ञात हो, पद सम्मिलित है और जिसमें उस पद पर सहायक लोक अभियोजक की, चाहे वह किसी भी नाम से ज्ञात हो, पदोन्नति के लिए उपबंध किया गया है ;

(ख) "अभियोजन अधिकारी" से लोक अभियोजक, अपर लोक अभियोजक या सहायक लोक अभियोजक के कृत्यों का पालन करने के लिए इस संहिता के अधीन नियुक्त किया गया व्यक्ति अभिप्रेत है, चाहे वह किसी भी नाम से ज्ञात हो ।

(7) कोई व्यक्ति उपधारा (1) या उपधारा (2) या उपधारा (3) या उपधारा (6) के अधीन लोक अभियोजक या अपर लोक अभियोजक नियुक्त किए जाने का पात्र तभी होगा जब वह कम से कम सात वर्ष तक अधिवक्ता के रूप में विधि व्यवसाय करता रहा हो ।

(8) केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार किसी मामले या किसी वर्ग के मामलों के प्रयोजनों के लिए किसी अधिवक्ता को, जो कम से कम दस वर्ष तक विधि व्यवसाय करता रहा हो, विशेष लोक अभियोजक नियुक्त कर सकती है :

परंतु न्यायालय इस उपधारा के अधीन पीड़ित को, अभियोजन की सहायता करने के लिए अपनी पसंद का अधिवक्ता रखने के लिए अनुज्ञात कर सकेगा ।

(9) उपधारा (7) और उपधारा (8) के प्रयोजन के लिए उस अवधि के बारे में, जिसके दौरान किसी व्यक्ति ने प्लीडर के रूप में

विधि व्यवसाय किया है या लोक अभियोजक या अपर लोक अभियोजक या सहायक लोक अभियोजक या अन्य अभियोजन अधिकारी के रूप में, चाहे वह किसी भी नाम से ज्ञात हो, सेवाएं की हैं (चाहे इस संहिता के प्रारंभ के पहले की गई हों या पश्चात्) यह समझा जाएगा कि वह ऐसी अवधि है जिसके दौरान ऐसे व्यक्ति ने अधिवक्ता के रूप में विधि व्यवसाय किया है ।"

37. धारा 24 का परिशीलन करने से यह दर्शित होता है कि केन्द्रीय सरकार अपनी ओर से अभियोजन, अपील या अन्य कार्यवाहियों के संचालन के लिए अपने लोक अभियोजक नियुक्त करती है और राज्य सरकार अपनी ओर से अभियोजन, अपील या अन्य कार्यवाहियों के संचालन के लिए अपने लोक अभियोजक नियुक्त करती है । उनका एक-दूसरे पर कोई नियंत्रण नहीं होता है । यथास्थिति, केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार किसी मामले या वर्ग के मामलों के प्रयोजन के लिए एक विशेष लोक अभियोजक नियुक्त कर सकती है । धारा 378(1) के अधीन राज्य सरकार अपने लोक अभियोजक को दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध अपील फाइल करने का निदेश दे सकती है जबकि धारा 378(2) के अधीन केन्द्रीय सरकार अपने लोक अभियोजक को दोषमुक्ति के किसी आदेश के विरुद्ध अपील फाइल करने का निदेश दे सकती है । इस प्रकार, दोषमुक्ति के किसी आदेश के विरुद्ध अपील करने में लोक अभियोजक का सहबद्ध होना आवश्यक है । 1946 के अधिनियम में कतिपय ऐसे अपराधों या वर्ग के अपराधों के अन्वेषण के लिए, जो कि 1946 के अधिनियम की धारा 3 के अधीन अधिसूचित हैं, एक विशेष पुलिस स्थापन के गठन के लिए उपबंध किया गया है । 1946 के अधिनियम के उपबंधों का सूक्ष्म परिशीलन करने पर यह दर्शित होता है कि उसके अधीन अन्वेषण केन्द्रीय अन्वेषण है और संबंधित अधिकारी केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त अधिकारी के अधीक्षण के अधीन होते हैं । केन्द्रीय सरकार का ही दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन पर अधीक्षण होता है । अतः इस बात की अवेक्षा करना महत्वपूर्ण है कि केन्द्रीय सरकार ही दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन द्वारा मामले के अन्वेषण और उसके अंतिम परिणाम से संबद्ध होती है । इसी कारण से धारा 378 की उपधारा (2) में केन्द्रीय सरकार के निदेश पर उसके लोक अभियोजक द्वारा उसमें उल्लिखित दो प्रकार के मामलों में दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील करने का उपबंध है । इस प्रकार, उपधारा (1) में के आरंभिक शब्द राज्य सरकार को दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध

अपील फाइल करने के लिए दी गई साधारण शक्ति को द्योतित करते हैं जिससे कि केन्द्रीय अभिकरण, जिसका उपधारा (2) में निर्दिष्ट मामलों के अन्वेषण से एकमात्र और सन्निकट संबंध है, समुचित मामलों में केन्द्रीय सरकार को अपील करने का निदेश देने के लिए समावेदन कर सके ।

38. श्री राम जेठमलानी तथा श्री एल. नागेश्वर राव द्वारा **एकनाथ शंकरराव मुक्कावर** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय के प्रति निर्देश किया गया है और उसका अवलंब लिया गया है । अब हम उक्त विनिश्चय पर उचित रूप से विचार कर सकते हैं । **एकनाथ शंकरराव मुक्कावर** (उपर्युक्त) वाले मामले में धारा 377 (दंडादेश की अपर्याप्तता के विरुद्ध अपील) के अर्थान्वयन पर विचार किया गया था । 1973 की संहिता की धारा 377(1) और (2), जिससे **एकनाथ शंकरराव मुक्कावर** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय का संबंध था, निम्नलिखित रूप में है :–

> "धारा 377. **राज्य सरकार द्वारा दंडादेश के विरुद्ध अपील** - (1) उपधारा (2) में जैसा उपबंधित है उसके सिवाय राज्य सरकार, उच्च न्यायालय से भिन्न किसी न्यायालय द्वारा किए गए विचारण में दोषसिद्धि के किसी मामले में लोक अभियोजक को दंडादेश की अपर्याप्तता के आधार पर उसके विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील उपस्थित करने का निदेश दे सकती है ।
>
> (2) यदि ऐसी दोषसिद्धि किसी ऐसे मामले में है जिसमें अपराध का अन्वेषण दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन अधिनियम, 1946 (1946 का 25) के अधीन गठित दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन द्वारा या इस संहिता से भिन्न किसी केन्द्रीय अधिनियम के अधीन अपराध का अन्वेषण करने के लिए सशक्त किसी अन्य अभिकरण द्वारा किया गया है तो केन्द्रीय सरकार भी लोक अभियोजक को दंडादेश की अपर्याप्तता के आधार पर उसके विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील उपस्थित करने का निदेश दे सकती है ।"

इस न्यायालय ने पूर्वोक्त उपबंध के संबंध में निम्न प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

> "10. यह सत्य है कि धारा 378(2) पुरानी संहिता की धारा 417(2) के उदाहरण का अनुसरण करती है और अपील का अधिकार राज्य सरकार और केन्द्रीय सरकार दोनों को धारा 378(2) के स्पष्ट शब्दों में प्रदत्त है । यह स्पष्ट है कि विधानमंडल ने दंडादेश की

अपर्याप्तता के विरुद्ध अपील के मामले पर विचार करते समय सही द्विभाजन किया है । हम इस बात से सहमत हैं कि धारा 377(2) में इसी प्रकार के 'भी' शब्द की अनुपस्थिति में न्यायालय के लिए यह संभव नहीं है कि वह भूल का कारण बतलाए । दंड प्रक्रिया संहिता की दो धाराओं धारा 377 और धारा 378 इतनी निकटता के साथ स्थित होने के कारण यह अभिनिर्धारित करना संभव नहीं हैं धारा 377(2) में 'भी' शब्द का लोप अनवधानता या असावधानी के कारण है ।

11. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 377 अपील का एक नया अधिकार पुरःस्थापित करती है जो पुरानी संहिता के अधीन पहले उपलब्ध नहीं था । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 377 की उपधारा (1) के अधीन राज्य सरकार को सभी मामलों में जो उस धारा की उपधारा (2) में निर्दिष्ट मामलों से भिन्न हैं, दंडादेश की अपर्याप्तता के विरुद्ध अपील का अधिकार है । इस बात को 'उपधारा (2) में अन्यथा उपबंधित के सिवाय' के प्रारंभिक खंड द्वारा धारा 377(1) के अधीन स्पष्ट कर दिया गया है । धारा 377(2) दूसरी ओर, केन्द्रीय सरकार को दो प्रकार के मामलों में उसकी अपर्याप्तता के आधार पर दंडादेश के विरुद्ध अपील का अधिकार प्रदत्त करती है–

(1) वे मामले जहां अन्वेषण दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन अधिनियम, 1946 के अधीन गठित दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन द्वारा किया जाता है ।

(2) वे अन्य मामले जिनका अन्वेषण केन्द्रीय अधिनियम, जो दंड प्रक्रिया संहिता नहीं है, के अधीन अन्वेषण करने के लिए सशक्त अन्य अभिकरण द्वारा किया गया है ।

12. प्रथम प्रकार के मामलों के बारे में कोई कठिनाई नहीं है जिनका अन्वेषण दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन द्वारा किया जाता है, जहां पर, निश्चित रूप से केन्द्रीय सरकार दंडादेश की अपर्याप्तता के विरुद्ध अपील के लिए सक्षम प्राधिकारी है ।"

39. किसी विनिश्चय का सार उसका विनिश्चयाधार होता है न कि उसमें पाई गई प्रत्येक मताभिव्यक्ति, जैसाकि इस न्यायालय ने **उड़ीसा राज्य** बनाम **सुधांशु शेखर मिश्रा और अन्य**[1] वाले मामले में कहा गया है ।

---

[1] ए. आई. आर. 1968 एस. सी. 647.

एकनाथ शंकरराव मुक्कावर (उपर्युक्त) वाले विनिश्चय का विनिश्चयाधार यह है कि विधानमंडल दंडादेश की अपर्याप्तता के विरुद्ध अपील के मामले में अविच्छिन्न द्विभाजन को बनाए रखा है; धारा 377 की उपधारा (2) में निर्दिष्ट दो प्रकार के मामलों में दंडादेश की अपर्याप्तता के विरुद्ध अपील करने के लिए सक्षम प्राधिकारी केन्द्रीय सरकार है । तथापि, श्री एल. नागेश्वर राव ने यह निवेदन किया कि **एकनाथ शंकरराव मुक्कावर** (उपर्युक्त) वाले मामले में धारा 377 की उपधारा (1) में "भी" शब्द के अभाव में इस न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया था कि राज्य सरकार धारा 377(2) के अंतर्गत आने वाले किसी मामले में अपील फाइल करने के लिए असक्षम थी । किन्तु इस न्यायालय द्वारा इंगित कमी का उपचार कर दिया गया है; संसद् ने 1978 के अधिनियम सं. 45 द्वारा उसमें संशोधन कर दिया है और उसमें "भी" शब्द जोड़ दिया गया है और उसे तात्विक रूप से धारा 378(2) के उपबंधों के समान बना दिया है और उक्त संशोधन के उद्देश्यों और कारणों के कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि राज्य सरकार भी धारा 377(2) के अंतर्गत आने वाले किसी मामले में अपील फाइल करने के लिए सक्षम है । हम श्री एल. नागेश्वर राव के निवेदन से कई कारणों से प्रेरित नहीं हुए हैं । प्रथमतः, धारा 378 के संबंध में **एकनाथ शंकरराव मुक्कावर** (उपर्युक्त) वाले मामले में की गई मताभिव्यक्तियां बाध्यकारी पूर्व-निर्णय के रूप में प्रवर्तित नहीं होती हैं क्योंकि धारा 378 का अर्थान्वयन उस मामले में न तो विचारार्थ था और न ही विवादग्रस्त था । द्वितीयतः और महत्वपूर्ण रूप से यद्यपि धारा 377 की उपधारा (2) में 1978 के अधिनियम सं. 45 द्वारा संशोधन किया गया और उसमें "भी" शब्द जोड़ दिया गया है किन्तु उस संशोधन से संबंधित उद्देश्यों और कारणों का कथन, जहां तक धारा 378(1) और (2) के अर्थान्वयन का संबंध है, सुसंगत नहीं है । जहां तक धारा 378 का संबंध है, उपधारा (2) में आने वाले "भी" शब्द को वह अर्थ प्रदान नहीं किया जा सकता जिसके परिणामस्वरूप उपधारा (1) में "उपधारा (2) में जैसा उपबंधित है उसके सिवाय" नामक नियंत्रणकारी शब्दों के प्रभाव को समाप्त करना होगा जो कि उपधारा (2) में उल्लिखित दो प्रकार के मामलों को उपधारा (1) के मुख्य भाग के प्रवर्तन से अपवर्जित करने संबंधी विधायी आशय के द्योतक हैं ।

40. हमारी राय में, विधानमंडल ने दोषमुक्ति के आदेश से अपील के

मामले में पारस्परिक रूप से अनन्य विभाजन बनाए रखा है चूंकि उपधारा (2) में निर्दिष्ट दो प्रकार के मामलों में दोषमुक्ति के आदेश से अपील करने के लिए सक्षम प्राधिकारी केन्द्रीय सरकार है और ऐसे मामलों में राज्य सरकार के प्राधिकारी को अपवर्जित किया गया है । आवश्यक विवक्षा के रूप में, यह अभिनिर्धारित किया जाना है और हम अभिनिर्धारित करते हैं कि (बिहार) राज्य सरकार अपने लोक अभियोजक को विशेष न्यायाधीश, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो (पशु पालन विभाग), पटना द्वारा पारित तारीख 18 दिसम्बर, 2006 के निर्णय से अपील उपस्थित करने का निदेश देने के लिए सक्षम नहीं है ।

41. ऊपर किए गए विचार-विमर्श को ध्यान में रखते हुए संविधान के अनुच्छेद 162 के परन्तुक पर आधारित श्री राम जेठमलानी की इस दलील पर विचार करना आवश्यक नहीं है कि राज्य सरकार और केन्द्रीय सरकार द्वारा कार्यपालक शक्तियों के प्रयोग में विरोधाभास की दशा में केन्द्रीय सरकार का विनिश्चय अभिभावी होगा ।

42. उपर्युक्त निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए कारण सही नहीं हैं और आक्षेपित आदेश कायम नहीं रखा जा सकता है ।

43. परिणामस्वरूप, दोनों अपीलें मंजूर की जाती हैं, उच्च न्यायालय द्वारा पारित तारीख 20 सितम्बर, 2007 का आदेश अपास्त किया जाता है और पटना उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई 2007 की सरकारी अपील सं. 1 - बिहार राज्य **बनाम** लालू प्रसाद और अन्य नामंजूर की जाती है क्योंकि वह ग्रहण किए जाने योग्य नहीं है ।

अपीलें मंजूर की गईं ।

ग्रो./ज.